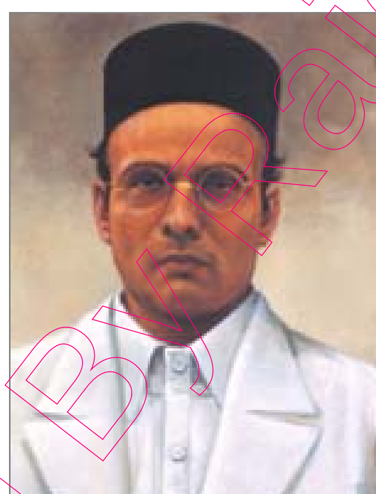
हिंदुत्व

(हिंदी)



वीर सावरकर

वीर सावरकरजी का यह लघुग्रंथ प्रथम अंग्रेजी में सन १९२३ में 'मराठा' इस नाम से, उनके बंदीवास के कारण, प्रसिद्ध हुआ था ।

इसका श्री. ल. ना. गर्दे के द्वारा सन १९२६ में प्रकाशित हुआ यह हिंदी भाषांतर ।

हिन्दुत्व

(" एक मराठा " कृत " हिन्दुत्व " नामक अंगरेजी पुस्तकका हिन्दी अनुवाद)

भाषांतरकार

श्रीलक्ष्मणनारायण गर्दे

पौष १९८२

मूल्य ॥।)

प्रकाशक—

लक्ष्मणनारायण गर्दे
१, नरसिंग लेन अमहर्स्ट स्ट्रीट
कलकत्ता।

मुद्रक—

किशोरीलाल केडिया,
वणिक प्रेस, १ सरकार लेन
कलकत्ता।

प्रस्तावना

"हिन्दुत्व" क्या है ? इसी प्रश्नका प्रामाणिक और तर्क-शुद्ध उत्तर इस पुस्तकमें दिया गया है। हम यह समझते हैं कि इस समय प्रत्येक हिन्दूको यह जाननेकी आवश्यकता है कि हिन्दुत्व क्या है। हिन्दुत्वकी पहचान ही हिन्दू-संघटनका आधार है। यदि हम यही नहीं जानते कि हिन्दुत्व क्या है अथवा वह कौनसी बात है जो प्रत्येक हिन्दूमें है, चाहे उसका धर्मसंप्रदाय कुछ भी हो, तो हम यही नहीं जानते कि हम हिन्दूसंघटनके नामसे किसका संघटन करने चले हैं अथवा क्या करना चाहते हैं। हमने बहुतसे ऐसे लोगोंको देखा है कि जो हिन्दूसंघटन चाहते हैं, पर यह नहीं जानते कि हिन्दूका हिन्दुत्व क्या है या हिन्दूकी परिभाषा क्या है। बहुतसे लोग तो यह समझते हैं कि हिन्दू तो कोई एक जाति ही नहीं है, न कोई एक धर्म ही है और इसलिये "हिन्दू"की कोई परिभाषा ही नहीं हो सकती। परन्तु यह कहते हुए भी वे इस बातको अस्वीकार नहीं करते, कोई भी अस्वीकार नहीं कर सकता कि, हिन्दुस्थानमें या हिन्दुस्थानके बाहर जो कोई हिन्दू हैं वे यह जानते हैं कि हम हिन्दू हैं, और अन्य लोग भी यह जानते हैं कि ये हिन्दू हैं। इसीसे यह बात सिद्ध है कि हिन्दू जब हैं तब कुछ न कुछ

हिन्दुत्व भी है। उस हिन्दुत्वको हम हिन्दूधर्म कह सकते हैं, पर 'धर्म' शब्दका आजकल इतना संकुचित अर्थ होने लगा है कि उससे लोग एक विशिष्ट प्रकारके धर्म-संप्रदायका ही अर्थ ग्रहण करते हैं। इसलिये इस पुस्तकमें जानबूझकर हिन्दूका वह सहज-धर्म, जिससे हिन्दू हिन्दू कहाता है, "हिन्दू-धर्म" नहीं कहा गया, बल्कि "हिन्दुत्व" कहा है जिससे किसी संप्रदायके धर्मका भ्रम उसमें न हो। हिन्दुस्थानमें हिन्दू-जातिके अन्तर्गत सनातनधर्म समाजसे लेकर राधास्वामी पन्थतक नानाविध धर्म-संप्रदाय हैं। ऐसे प्रत्येक संप्रदाय या समाजका संप्रदाय-धर्म उस समाज या संप्रदायका समाजत्व या संप्रदायत्व है। परन्तु इन सब समाजोंका आधारभूत एक धर्म है, एक तत्व है और वह सबके लिये सामान्य है। उसी धर्म या तत्वका नाम है 'हिन्दुत्व'। वह हिन्दुत्व क्या है, यह प्रत्येक हिन्दूको जानना चाहिये, प्रत्येक हिन्दू-समाजको जानना चाहिये, प्रत्येक हिन्दू-धर्मसंप्रदायको जानना चाहिये। प्रत्येक मनुष्यको जैसे पहले यह जानना चाहिये कि हम मनुष्य हैं और तभी वह मानवधर्मशास्त्रमें अपना विशिष्ट धर्म जाननेका अधिकारी होता है, वैसे ही प्रत्येक हिन्दूको पहले यह जानना चाहिये कि हम हिन्दू हैं और तभी वह अपने विशिष्ट धर्म-संप्रदायका अधिकारी होता है। "हम हिन्दू हैं" इस बातकी पहचान जिस हिन्दू व्यक्ति या समाजको न हो, उसे यही पता नहीं है कि हम कहाँ हैं, हमारे अस्तित्वका आधार क्या है, हमारी शक्तिका उद्गमस्थान क्या है। इसलिये

चाहे कोई सिख हो या सनातनी, आर्यसमाजी हो या जैनी, ब्राह्मण हो या चांडाल, उसे अपने मनुष्यत्वकी पहचानके बाद सबसे पहला ज्ञान यह होना चाहिये कि हम हिन्दू हैं, हिन्दुत्व हमारा प्राण है, अखिल हिन्दू-जाति ही हमारा आधार है। चाहे कोई आध्यात्मिक दृष्टिसे देखे, या सांसारिक दृष्टिसे, इस सिद्धान्तको वह अस्वीकार नहीं कर सकता। उसे यह मानना ही होगा कि हिन्दू-जातिके अन्तर्गत सब समाजों और धर्म-संप्रदायों आधार हिन्दुत्व है और इसलिये यह जानना होगा कि वह हिन्दुत्व क्या है। प्रस्तुत पुस्तकका वही विषय है और इसलिये हम यहाँ उसका विस्तार नहीं करेंगे। पाठक पुस्तक पढ़कर यह स्वयं अनुभव करेंगे कि समग्र हिन्दू-जाति एक है, इस जातिका मनःसंस्कार और इतिहास एक है; जन्मभूमि एक है और रक्त भी एक है। हिन्दू-जातिमें सनातनधर्म-समाजके चारों या पाँचों वर्ण, आर्यसमाज, सिख, जैन, बौद्ध, लिंगायत तथा अन्य असंख्य पंथ हैं; पर इन सबमें जो जीवनरस प्रवाहित हो रहा है, वह एक हिन्दू-रक्त ही है। रक्त-संबंधसे बढ़कर दृढ़ बन्धन दूसरा है ही नहीं। इस समय हिन्दू-जातिके भिन्न-भिन्न वर्णों और समाजोंमें परस्पर रक्त-संबंध नहीं होता। हम सनातनधर्मावलंबी ऐसा चाहते भी नहीं। यही नहीं, बल्कि असवर्ण-विवाहके हम घोर विरोधी भी हैं। पर ऐसा होते हुए भी हम इस बातको अस्वीकार नहीं कर सकते कि यह जो हिन्दू-जाति है,यह एक ही रक्तसे उत्पन्न हुई है और प्रत्येक हिन्दूमें हमारे पूर्वतम पितरोंका

रक्त ही प्रवाहित हो रहा है। इस तरह अफ़गानिस्तानके मुसलमान और हिन्दुस्थानके मुसलमानोंमें जितना जीवनैक्य-संबंध संभव नहीं है उतना हम हिंदुओंमें है। पृथ्वीके और किसी देशकी किसी जातिमें ऐसा रक्त-संबंध-जन्य जीवनैक्य नहीं जैसा हिन्दू-जातिमें, क्योंकि हिन्दू-जातिने इस संबंधमें रक्तकी विशुद्धताकी रक्षा की है और हिन्दू-जातिमें जो अनुलोम-प्रतिलोम विवाहका निषेध हुआ उसका कारण भी विशुद्ध रक्तकी रक्षा ही है, जिससे हिन्दू-जातिमें आज शुद्ध, शुद्धतर और शुद्धतम हिन्दू-रक्त वर्ण-वर्णान्तरोंमें देखा जाता है और साथ ही समग्र हिन्दू-जातिमें एक ही हिन्दू-रक्त प्रवाहित होता है। यह हिन्दू-रक्त हिन्दू-जाति-का जीवनैक्य है। क्या इस जीवनैक्यको हम आप अपने अन्तः-करणमें अनुभव करते हैं? यदि नहीं करते तो हम अपने आपको नहीं पहचानते—सिख सनातनियोंको नहीं पहचानते, ब्राह्मण चांडालको नहीं पहचानते, हिन्दू हिंदूको नहीं पहचानते और इस जीवनसंग्राममें शत्रु मित्रको—अपने परायेको—भूलकर आप ही अपने काल होते हैं! इसलिये हिन्दुओ, सावधान! अपने आपको पहचानो; तुम सब हिन्दू हो, तुम सब बंधु-बंधु हो—ब्राह्मणसे चांडालतक एक ही हिन्दू-रक्त हिन्दू-जातिमें प्रवाहित हो रहा है समग्र हिन्दू-जाति एक विराट कुटुम्बके समान है, जिसकी जन्म-भूमि, संस्कृति और इतिहास एक ही है। जन्मभूमि, रक्त-संबंध, संस्कृति और इतिहास इन चारों बंधनोंसे बद्ध और कोई जाति संसारमें नहीं है। हिन्दू-जातिकी इस एकताको अनुभव करना

ही हिन्दू-संघटनका आधार है। जिस दिन हिन्दू-जातिके प्रत्येक समाजमें यह चैतन्य—यह सत्य—जाग उठेगा कि हम सबसे पहले हिन्दू हैं और हिन्दुत्व ही हमारा प्राण है, उस दिन हिन्दू-संघटन सिद्ध हो जायगा—उस दिन हिन्दू-जाति इतनी बलवान होगी कि संसारका कोई संघ या गुट उसका सामना नहीं कर सकेगा।

इस समय-हिन्दू जातिपर संकट है। पर संकटकाल ही जागरणका काल है, जब अपने आपको भूले हुए हिन्दू अपने आपको पहचानने लगते हैं। अपने आपको भूलनेसे ही संकट आ घेरता है और अपने आपको पहचाननेसे ही संकट दूर हो जाता है। जब जब हिन्दू-जातिपर संकट आया है और जब जब उसने उस संकटसे पार पाया है, तब तब उसने अपने आपको पहचाननेका परिचय दिया है और आत्मस्मृतिको जगाकर विराट् हिन्दू-जातिने एक होकर अपने अस्तित्वकी रक्षा की है, अपनी संस्कृतिसे दूसरोंको भी लाभ पहुंचाया है। हिन्दू-जातिके इस जागरणका इतिहास प्रस्तुत पुस्तकके "हिन्दवानेकी ढाल" प्रकरणमें अपनी दिव्य झलक एक बार दिखाकर यह बता जाता है कि हिन्दुओ! कहाँ भटक रहे हो? किस सोचमें डूबे हो? क्या तुम दुर्बल हो? क्या तुम फूटके बीज हो? क्या तुम सदासे दूसरोंकी गुलामी करते आये हो? नहीं, नहीं, यह सारा भ्रम है; तुम्हारी सिंहशक्तिको उभरने न देनेके लिये यह जाल बिछाया गया है; जरा अपने इतिहासके स्वच्छसरो-

वरमें अपने रूपकी परछाईं देखो, तो देखोगे कि तुम वही आर्य-सिंह हो जो संसारके अन्य बड़े बड़े राष्ट्रोंके नामशेष होनेपर भी, अबतक जीते हो ; जो युगयुगान्तरोंसे विद्या, वैभव और पराक्रमके प्रकाशसे संसारको शिक्षा, दीक्षा और दंड देते चले आ रहे हो ! हां, इन अगणित वर्षोंके इतिहासमें इधर हजार-बारह सौ वर्ष तुम्हारे कभी दासत्वमें और कभी उस दासत्वको नष्ट करनेके प्रयत्नमें बीते हैं ! पर यह हजार बारह सौ वर्षका इति-हास ही तुम्हारा इतिहास नहीं है, इसके पूर्व न जाने कितने हजार वर्ष तुम्हारे पराक्रमके प्रखर प्रकाशमें बीते हैं। और इन हजार-बारह सौ वर्षका इतिहास भी तुम्हारे दासत्वका इतिहास नहीं, बल्कि दासत्वको नष्ट करनेके लिये संग्रामपर संग्राम करते रहनेका ही इतिहास है। यह इसी कालका इतिहास है कि अरबके रेगिस्तानसे रेतीके कणोंके समान असंख्य अरब आक्रमणका-रियोंने ईरान, शाम, फिलस्तीन आदि देशोंमें रहनेवाली जातियों-को निःशेष कर मुसलमान बना डाला और उसी विजयोन्मादकी अप्रतिहत लहरें छठी शताब्दीके अन्तमें सिन्धुके तट-प्रदेशपर आकर गिरने लगीं, तब तुम्हीं तो थे जिन्होंने वहीं उन्हें रोक रखा। और किस देश या जातिने यह नमूना संसारको दिखाया कि पृथ्वीको पादाक्रांत करते चले आते आक्रमणकारियोंसे इस तरह जूझे कि दस-बीस वर्ष नहीं, सौ-पचास भी नहीं, चार सौ वर्षतक उन्हें सिन्धमें अटके रह जाना पड़ा, आक्रमणकारी आगे नहीं बढ़ सके ? संसारमें और कोई शक्ति जिसे नहीं रोक सकी,

उसे रोका तो हिन्दू-जातिने ही रोका और उस जमानेमें रोका जब दैव प्रतिकूल था। सिन्धपर आक्रमण करनेके पश्चात् चार सौ वर्षतक मुसलमान सिन्ध और मुलतानके आगे न बढ़ सके। इस समय मुसलमानोंने सारे यूरोपको पादाक्रांत करके स्पेन देशमें अपना झंडा फहराया था, पर हिन्दुस्थानमें उन्हें सीमापर ही ४ सदियोंतक लड़ना पड़ा। अन्तको दसवीं शताब्दीके अन्तमें और ११ वीं शताब्दीके आरंभमें महमूद गजनी पश्चिमोत्तर सीमा लांघकर हिन्दुस्थानमें घुसा। उसने बारह बार आक्रमण किया। बार बार हारनेपर भी हिन्दुओंने उसके सामने सिर नहीं झुकाया, उससे युद्ध ही बराबर करते रहे, और महमूद गजनीको सोमनाथकी लूटके बाद हिन्दू राजा भीमदेवकी सेनाके भयसे सिन्धके रेगिस्तानके रास्ते हिन्दुस्थानसे भाग जाना पड़ा-सम्मुख युद्धमें उसका साहस नहीं था जो सामना करता। महमूद गजनीके साथ ये जो युद्ध हुए, इनमें समग्र हिन्दू-राजा संघटित होकर नहीं लड़े, यद्यपि उनमें हिन्दुत्वका भाव था। वे संघटनकी आवश्यकता अनुभव नहीं करते थे। एक-एक राजा इतना बलशाली था कि संघटनका किसीको ध्यान नहीं रहा और इसका परिणाम यह हुआ कि सिन्धपर आक्रमण होनेके ४ सौ वर्ष पश्चात् आधा पंजाब प्रान्त मुसलमानोंके अधिकारमें चला गया। पर अधिकारमें चला गया इसका यह मतलब नहीं है कि मुसलमानोंका स्वामित्व स्वीकार करके हिन्दू हाथपर हाथ धरके बैठ गये। इसके बाद ११९१ में महम्मद गोरीने भारतपर चढ़ाई

की। हिंदूपति पृथ्वीराजके तेजस्वी खड्गने समरमें यवन-सेनाका संहार करके महम्मदको कैद किया। इसने पृथ्वीराजसे अपने प्राणोंकी भिक्षा माँगी। हिंदूपतिने उसे छोड़ दिया। पर इस कृतघ्नने अपना वचन भंग करके सन् ११९३ में फिर हिन्दुस्थानपर अकस्मात् आक्रमण कर दिल्लीका सिंहासन भ्रष्ट किया! इस तरह लगातार ६ सौ वर्ष लड़नेके पश्चात् हिन्दुस्थान परतंत्र हुआ! संसारमें कौनसी ऐसी जाति है जो अपनी स्वतंत्रताके लिये पीढ़ी दर पीढ़ी लगातार ६ शताब्दियोंतक रणचण्डीको अपने पुत्रोंकी भेंट चढ़ा सकी हो? पर यह संग्राम यहीं समाप्त नहीं हुआ।

पृथ्वीराजकी हारके पश्चात् १०० वर्षतक मुसलमान दक्षिण-भारतमें प्रवेश नहीं कर सके। १२९३ में अलाउद्दीनने दक्षिणपर चढ़ाई की। असावधान और असंघटित यादव-राज्य यवन-कूट-नीतिको न समझकर पहली ही चढ़ाईमें छिन्न-भिन्न हो गया। यादवराज रामदेवरावने दिल्लीके बादशाहका प्रभुत्व स्वीकार किया। पर हिन्दुओंको यह स्वीकार नहीं था। रामदेवरावके पुत्र शंकरदेवने हिन्दू-स्वातंत्र्यका झंडा फहराया और यवनसेनासे लड़कर समरांगणमें अपना शरीर छोड़ा। यादवराजकी राजधानी देवगिरि मुसलमानोंके अधिकारमें गयी और महाराष्ट्र पराधीन हुआ! पर फिर रामदेवरावके जामाता हरपालदेवने महाराष्ट्रको स्वाधीन किया। मुसलमानोंसे युद्ध जारी ही था। सन् १३१८ में हरपालदेव मारा गया। देवगिरिका राज्य नष्ट हुआ, पर हिन्दू-वीर्य नष्ट नहीं हुआ। दक्षिण-भारतके राज्यभ्रष्ट हिन्दू राजा और

हिन्दू वीर दक्षिणमें तुंगभद्रा नदीके तटपर, उस प्राचीन परम पुनीत पंपासरोवरके वारिप्रपातरम्य पर्वत-प्रदेशमें हिन्दू-शक्तिके संघटनके लिये एकत्र होने लगे। सन् १३३५ में "योगेश्वर" श्री विद्यारण्य स्वामीके उपदेश और "धनुर्द्धर" श्री हरिहर और बुक्कके पराक्रमसे उस विजयानगर-राज्यकी स्थापना हुई जिसने हिन्दू-विजयवजयंती, हिन्दू-संस्कृति और हिन्दू-धर्मकी रक्षा की। समग्र हिन्दू-जातिकी ओरसे इस विजयानगर राज्यने आक्रमण-कारियोंके साथ संग्राम जारी रखा। ढाई सौ वर्ष-तक इसने अपना काम किया। अन्तको दक्षिणके सब मुसलमान राज्योंने मिलकर इससे घोर संग्राम किया और सन् १५६४ में तालिकोटके उस समर-यज्ञमें विजयानगर राज्यकी आहुति पड़ी—विजयानगर राज्य नष्ट हुआ; पर मानो उसके चिता-भस्मसे ही, इस संग्रामके ५० वर्ष बाद ही महाराष्ट्रने हिन्दू-शक्तिकी विजयवैजयन्ती अपने हाथमें ली और समर्थ रामदास और छत्रपति शिवाजी उत्पन्न हुए जिन्होंने महा-राष्ट्रको स्वाधीन करके वही संग्राम जारी रखा जो सन् ७१२ में सिन्धु नदीके तटपर आरंभ हुआ था और एक शताब्दीके अन्दर ही हिन्दुस्थानमें एक बार फिर " हिन्दूपद्पादशाही " स्थापित कर दी। इसीके सिलसिलेमें आगे सिखोंका उत्थान हुआ और दक्षिण ओरसे मराठोंने, उत्तरमें सिखोंने और बीचमें राजपूतोंने हिन्दू राज्य स्थापित करनेका जो अलग अलग उद्योग किया वह हिन्दुत्वकी रक्षाका ही उद्योग था।

अंगरेजी राज्य स्थापित होनेके पूर्व हिन्दुस्थानमें हिन्दुओंका राज्य था जिसकी स्वाधीनताके लिये वे ११ सौ वर्षतक लड़ते रहे और लड़कर उन्होंने जिसे फिर पाया। दैवसंयोगसे वह स्वाधीनताश्री फिर हरण हुई। पर ११ सौ वर्षका यह इतिहास संग्रामका इतिहास हैं और इसका फल प्रत्यक्ष है। हिन्दू-जाति जीवित है। उसकी संस्कृति जीवित है। उसका इतिहास जीवित है। उसका शुद्ध रक्त वही रक्त है जिसने विक्रम और शालिवाहन, दाहिर और अनंगपाल, भीमदेव और पृथ्वीराज, जयपाल और प्रताप, विद्यारण्य और बुक्कराय, रामदास और शिवाजी, गुरु गोविन्द और छत्रसाल, बाजीराव और माधवराव, नाना और महादजीको उत्पन्न किया जिन्होंने हिन्दुत्वकी रक्षाका व्रत अखंड रखा और जिनके नाम और काम आज भी हिन्दू-जातिको अपने पवित्र व्रत और अपनी अप्रतिम शक्तिका अमोघ उपदेश देकर उसे अपने सिंहरूपकी पहचान करा देते हैं। वही हिन्दू-जाति है। कौन कहता है, हिन्दू कायर हैं? कौन कहता है, हिन्दू-जाति एक नहीं है? कौन कहता है, हिन्दू दुर्बल हैं? हिन्दुओंका हिन्दुत्व प्रत्येक हिन्दूकी शक्तिका अखंड स्रोत है। यहां नैराश्य और भय कहां? यहां तो वह अजेय शक्ति है जिसने उस शक्तिको भी जीत लिया जिसके सामने अरबसे स्पेनतक उस समय कोई ठहर न सका। यह वह अजेय दैवी शक्ति है जिसे कोई जीत नहीं सकता; क्योंकि यह शक्ति संसारके संहारके लिये नहीं, संसारके उद्धारके लिये है—संसारको मनुष्योंके, मनुष्योंकी तरह, रहनेयोग्य बनानेके लिये है।

हिन्दुओंके"हिन्दुत्व" की रक्षाका यह पिछला इतिहास हिंदुओं-के खड्गका इतिहास है,पर यह खड्ग निपराधियोंके रक्तसे रंगा हुआ नहीं है। उसने मनुष्यत्वकी हत्या नहीं की है, सांप्रदायिक अहं-कारके शैतानकी उपासना नहीं की है। यह वही हिन्दू-जाति है जिसने ही पहलेपहल संसारमें अहिंसा-धर्मका प्रचार किया,जिसने ही संसारको खड्गसे नहीं, अमरत्वके सनातन शांतिप्रद उपदेशसे अपना शिष्य और अंकित बनाया, जिसने अहिंसा धर्मका यहां-तक प्रचार किया कि पशु-पक्षीको मारना भी दंडनीय अपराध माना, जिसके शांतिप्रद श्रेष्ठ जीवनको देखकर विदेशियोंने ही इसे "इंदु" की उपमा दी और आज भी आधेसे अधिक जगत जिसकी जन्मभूमिको अपनी पुण्यभूमि मानता है। इस हिन्दू-जातिकी विजय संसारमें सत्यकी विजय है। हिन्दू-जातिका यही मिशन है। इसीके लिये उसे अपने "हिन्दुत्व"-रक्षाका व्रत अखंड रखना है। अब वह परिस्थिति नहीं है जो पहले थी; पर संग्राम अब भी है। अब उसका रूप दूसरा है—प्राण वही है। इस इतिहाससे हमें हिन्दू-जातिके अनन्त धैर्य, अनुपम शौर्य और अद्भुत जीवनी शक्तिका परिचय मिलता है;पर इस धैर्य, शौर्य और जीवनी शक्तिके साथ एक बात यदि और होती तो हिन्दुस्थानके इतिहासमें यह थोड़ासा काल जो पराभव और परदास्यमें बीता, यह भी इस तरह न बीतता। जिस बातकी कसर आज स्पष्ट दिखायी देती है वह बात है संघटन। यह एक ऐतिहासिक सत्य है कि हिन्दुस्थानमें आकर कोई भी विदेशी सेना कभी किसी

संघटित हिन्दू-शक्तिका पराभव नहीं कर सकी। जब और जहां हिन्दू विघटित हुए तब और वहां ही विदेशियोंको अवसर मिला और इसी तरहसे हिन्दुस्थान पराधीन हुआ। सिन्धपर मुसलमानोंका जो सबसे पहले आक्रमण हुआ और जिसने भारतवर्षमें विदेशी राज्यकी नींव डाली वह आक्रमण भी कभी सफल न होता, कभी विदेशी राज्यकी वह नींव न पड़ती यदि सिन्धके हिन्दू एक होते और वहांके बौद्ध और सनातनधर्मावलम्बी आपसमें ही न झगड़ते। परन्तु यह इतिहास है जो बदल नहीं सकता। हां, इससे जो शिक्षा मिलती है वह यही है कि हिन्दू धैर्य, शौर्य और जीवनीशक्तिमें संसारकी किसी भी जातिसे हीन नहीं, बल्कि सब जातियोंसे श्रेष्ठ ही प्रमाणित हुए हैं और यदि यही जाति संघटित हो तो फिरसे यह संसारकी सिरमौर बने। हिन्दू-जातिका पिछला सहस्रों वर्षका इतिहास संसारकी किसी भी जातिसे अधिक उज्वल है और इसलिये इसका भावी इतिहास भी संसारमें सबसे अधिक उज्वल होनेवाला है।

हिन्दुत्वकी रक्षाके लिये हिन्दू-संघटन आवश्यक है। हिन्दुत्वकी रक्षा और हिन्दुस्थानके सर्वजनसमाज-सुखदायी स्वराज्यके लिये ही हिन्दूसंघटन हो रहा है। हिन्दू-जातिको जो आत्मविस्मृति हुई है उसे नष्ट करके उसे आत्मस्मरण करा देना है। इसलिये हिन्दुत्व क्या है, यही सबसे पहले जानना और जनाना होगा जिसमें एक हिन्दू दूसरे हिन्दूको देखते ही हिन्दुत्वके प्राणसे समप्राण हो जाय और अहिन्दू भी अपने हिन्दू रूपको

देख लें तथा हिन्दू-संस्कृतिके इन्दुवत सुशीतल स्वच्छ प्रकाशका आनन्द लें। हिन्दू जैसे पहले थे, वैसे फिर हो जायं। हिन्दुत्व ही हिन्दू-जातिका प्राण है और यह प्राण ही संघटनका आधार है। इसलिये जिस लेखकने हिन्दुत्वके लक्षण बतलानेवाली यह शास्त्रीय पुस्तक लिखी है उसने सचमुच ही हिन्दू-संघटनकी आधारभूमि ही दिखा दी है। आओ, इस आधारभूमिपर हम आप खड़े हो जायं, हिन्दुत्वके झंडेके नीचे एक हो जायं, और इस स्मृतिवचनको सार्थक करें कि,

येनास्य पितरो याता येन याताः पितामहाः
तेन यायात्सतां मार्गं तेन गच्छन्न रिष्यते।

लक्ष्मणनारायण गर्दे

सूचना—मूल पुस्तककी भाषा बहुत ही सुन्दर और ओजस्विनी है। भाषान्तरमें जो कोई दोष हों वे मेरे हैं और गुण मूल ग्रन्थकारके। प्रथम अध्यायके भाषान्तरमें वह अंश निकाल दिया गया है जिसमें "हिन्दुइज्म" शब्दका ही विचार है; क्योंकि भाषांतरमें इस शब्दके विचारकी कोई आवश्यकता भाषांतरकारको नहीं प्रतीत हुई। अन्य सब अध्यायोंका संपूर्ण भाषांतर है। पुस्तकके प्रत्येक अध्यायपर जो शीर्षक है वह मूल पुस्तकमें नहीं है। शीर्षक बैठानेमें जो कोई दोष हुआ हो, वह मेरा है।

ल० ना० गर्दे

हिन्दुत्व

(१)

हिन्दू नाममें क्या है ?

हम हिन्दू हैं और हिन्दू ही बने रहना चाहते हैं।

हिन्दू नामके साथ हमारी यह आसक्ति देखकर कुछ लोग, वेरोनाकी उस रूपवती कन्याके समान, जिसने अपने प्रेमीसे प्रेमके नामपर अपना नाम बदल देनेकी याचना की थी, उसीके मुखसे निकले हुए उद्गार इस प्रकार दुहरा सकते हैं कि, "नाममें क्या है ? नाम हाथ नहीं है, पैर नहीं है, बाँह नहीं है, चेहरा नहीं है, मनुष्य-शरीरका कोई अवयव नहीं है; फिर इसमें है ही क्या जो हम इस नामकी पूजा करें—उसे छोड़ न सकें ! वस्तु है तो नामकी क्या परवा ? गुलाबको गुलाब न कहकर उसे और किसी नामसे पुकारें तो इससे उसकी सुगन्ध तो कहीं नहीं जाती !" एक ही वस्तु है, पर भिन्न-भिन्न भाषाओंमें उसके भिन्न-भिन्न नाम हैं। इसीसे यह सन्देह दूर हो जाता है कि शब्द विशेष और उससे निकलनेवाले अर्थका परस्पर कोई स्वाभाविक अविच्छिन्न सम्बन्ध है। परन्तु वस्तु और वस्तुवाचक शब्दका परस्पर सम्बन्ध जितना ही दृढ़ और पुराना होता है उतना ही उस शब्द और उसके अर्थका परस्पर सम्बन्ध अविच्छिन्न हो जाता है।

और उस अर्थ या अभिप्रायको व्यक्त करनेकी मनोवस्थामें वही शब्द स्वाभाविक रीतिसे मुखसे निकल पड़ता है और उस शब्दसे वही अर्थ ध्यानमें आ जाता है। इसके साथ ही जब उस शब्दके साथ और भी अनेक भावनाएँ उदय होती हैं, जिनका उदय होना उस शब्दके उच्चारणके साथ हम नहीं रोक सकते, तब तो उस शब्द या नामका उतना ही महत्व है, जितना उस वस्तुका। इसलिये जो लोग ऐसा कहें कि नाममें क्या है, उन्हें उदाहरणके तौरपर अपने ही मनसे यह प्रश्न करना चाहिये कि क्या हम अपने उपास्य दैवत राम या कृष्णका नाम बदलकर महम्मद या ईसा रख सकते हैं? नाम हाथ, पैर, या और कोई अवयव नहीं है— नाम तो उस वस्तुका सर्वस्व है। नामकी महिमा ऐसो है कि वह भावना विशेषका प्रतीक हो जाता है और वह भावना मर्त्य मनुष्यों-की कई पीढ़ियोंके बाद भी जीवित रहती हैं। राम और कृष्ण इस मर्त्यलोकको छोड़कर चले गये, पर उनके नामकी महिमा नहीं घटी, उस नाममें जो भाव सन्निहित हैं, वे आज भी उस नामको लेते ही उदय हो जाते हैं। नाममें क्या रखा है? अयोध्याको अयोध्या न कहकर होनालूलू कहें तो क्या ऐसा कह सकते हैं? क्या शिवाजीका नाम बाटू और वाशिंगटनका नाम चंगेजखाँ रख सकते हैं? क्या कोई मुसलमान अपनेको शौकसे यहूदी कह सकता है? नहीं, इन नामोंमें इतिहास भरा हुआ है, आत्मगौरव भरा हुआ है। प्रत्यक्ष जीवन भरा हुआ है। इन नामोंमें जीवनी-शक्ति भरी हुई है।

ऐसे जीवनप्रद और कर्तव्यसूचक तथा गौरववाचक नामोंमें एक नाम हिन्दुत्व है, जिसके अर्थका विचार हम इस पुस्तकमें करना चाहते हैं। इस नाममें इतनी भावनाएं और संस्थाएं छिपी हुई हैं और वे भावनाएँ और संस्थाएँ इतनी बलवती और गम्भीर हैं कि इस नामका विश्लेषण करना असम्भव हो जाता है। यदि अधिक नहीं तो चालीस शताब्दियोंका इतिहास इस नाममें भरा हुआ है—इस नामका जो अभिप्राय है उस अभिप्रायको व्यक्त करनेकी शक्ति इसे प्राप्त करनेमें ४० शताब्दियाँ लगी हैं। बड़े-बड़े अवतारी पुरुष और कवि, शास्त्री पण्डित और धर्मव्यवस्थापक, योद्धा और इतिहासकार इस नामके लिये जीये, इस नामके लिये लड़े और इस नामपर मर मिटे! यह नाम क्या हमारी जातिके असंख्य कार्योंका ही परिणाम नहीं है? कभी युद्ध, कभी मिलाप और कभी परस्पर सहयोगके रूपमें हिन्दू जातिने जो कुछ किया वह सब इस नाममें है। हिन्दुत्व केवल एक शब्द नहीं है, एक सम्पूर्ण इतिहास है। हिन्दुत्वसे अभिप्राय किसी संप्रदायका संप्रदायधर्म नहीं हो सकता। हिन्दुत्व हमारी हिन्दू जातिका संपूर्ण इतिहास है। हिन्दुत्वका सम्पूर्ण भाव हृदयङ्गम करनेके लिये हमें 'हिन्दू' शब्दका ही वास्तविक अर्थ पहले समझना होगा और यह जानना होगा कि करोड़ों मनुष्योंके हृदयमें इस नामका साम्राज्य कैसे प्रतिष्ठित हुआ और कैसे इस वीर हिन्दू-जातिने यह नाम धारण किया।

हिन्दू नामकी उत्पत्ति

अभी इतना ऐतिहासिक अनुसन्धान नहीं हुआ है कि यह निश्चित रूपसे बताया जा सके कि पहले-पहल आर्य लोग सिन्धु नदीके किनारे कब आकर बसे और कब उन्होंने वहां अपना अग्निहोत्र स्थापित किया। परन्तु यह निश्चित है कि प्राचीन मिश्रवासी और बैबिलनवालोंकी जिस सभ्यताका संसारमें इतना नाम हुआ उस सभ्यताका जब पता भी नहीं था,तभी पवित्र सिन्धुसलिलकी कलकल ध्वनिके साथ यज्ञीय धूमकी सुगन्ध भी प्रवाहित हुआ करती थी और वह तट-प्रदेश वेदघोषसे गूँजा करता था, जिससे आर्योंके अन्तःकरणमें आध्यात्मिक ज्योति प्रज्वलित रहा करती थी। ये लोग पराक्रमी थे, वीर थे, सत्यानुसन्धान करते हुए इन्होंने अत्यन्त गम्भीर तत्वोंका अनुभव किया था। ये लोग ऐसे थे, इसीलिये ये एक महान् और स्थायी संस्कृतिकी नींव डालनेमें समर्थ हो सके। अपने और पड़ोसियोंसे, खासकर ईरानियोंसे, जिस समय इनका सम्बन्ध टूट चुका था, उस समयतक ये सातों सिन्धु—सप्तसिन्धुमें फैल चुके थे; और इनमें राष्ट्रीयताकी भावना केवल विकसित हीं नहीं हुई थी, प्रत्युत उन्होंने उसका स्थान और नाम भी निर्दिष्ट कर दिया था। नदियोंसे घिरे और सींचे जानेवाले इस देशमें रहते हुए

और इन स्थायी नदियोंसे सदा ही जीवनी शक्ति प्राप्त करते हुए, इन लोगोंने कृतज्ञताबुद्धिसे अपना नाम भी सप्तसिन्धु रख लिया, जो सप्तसिन्धु नाम संसारके सबसे प्राचीन ग्रन्थ ऋग्वेदमें आता है और जो समूचे वैदिक भारतवर्षका नाम था। आर्य लोग कृषिको सदासे ही प्रधान वृत्ति मानते आये हैं। (सर्वोत्तमं कर्षणमाहुरार्य्याः), और आर्य कृषक ही थे, इससे स्वभावतः ही इन सात नदियोंके परम भक्त थे और सिन्धुप्रधान ये सातों नदियाँ उनके लिये उनकी राष्ट्रीयता और संस्कृतिके चिह्नस्वरूप ही थीं—"इमा आपः शिवतमा इमा राष्ट्रस्य भेषजीः। इमा राष्ट्रस्य वर्धनीरिमा राष्ट्र भृतोपमाः॥"

यहांसे आर्य जब और आगे बढ़े तब उन्हें ऐसी ही परमोपकारिणी नदियाँ अनेक मिलीं, परंतु सप्तसिन्धुओंपर उनकी श्रद्धा और भक्ति कम नहीं हुई। और कम होती भी कैसे, जब इन्हीं सप्तसिन्धुओंने उन्हें एक राष्ट्र बनाया था और उन्हें वह नाम दिया था, जिसके द्वारा वे अपनी राष्ट्रीय और सांस्कृतिक एकताको प्रकट करते थे। आजकी प्रत्येक हिन्दू, चाहे वह कहींका हो, कृतज्ञताके साथ सप्तसिन्धुओंका स्मरण करता और आत्मशुद्धिके लिये उनका आवाहन करता है। "इमं मे गंगे यमुने सरस्वति शुतुद्रिस्तोमं सचता परुष्ण्या। असिक्न्या मरुद्वृधे वितस्तयार्जीकीये श्रृणुह्या सुषोमया॥ गंगे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति। नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेस्मिन् सन्निधिं कुरु॥"

ये लोग अपने आपको "सिन्धु" कहते थे, यही नहीं, बल्कि

हमारे पास इस बातके पक्के प्रमाण हैं कि आसपासके राष्ट्र इन्हें "सप्तसिन्धु" के नामसे ही जानते थे। संस्कृतका "स" भारतीय तथा भारतीयेतर प्राकृतोंमें आकर प्रायः "ह" हो जाता है। उदाहरणार्थ, सप्त शब्द भारतीय प्राकृतोंमें ही हप्त नहीं हो गया है प्रत्युत यूरोपियन भाषाओंमें भी वह हप्त हो गया है; "सप्ताह" को हिन्दुस्थानमें "हफ्ता" और यूरोपमें "हेप्तार्की" कहते हैं। संस्कृतका "केसरी" शब्द पुरानी हिन्दीमें "केहरी" हो गया है। "सरस्वती" शब्द ईरानी भाषामें "हरह्वती" हो गया है और "असुर" का रूपान्तर हुआ है "अहुर"। और तो और, हमारे राष्ट्रका वैदिक नाम "सप्तसिन्धु" प्राचीन ईरानियोंके "अवेस्ता" में "हप्तहिन्दु" करके लिखा गया है। इस प्रकार इतिहासके उषः-कालमें ही हम देखते हैं कि हम "सिन्धु" याने "हिन्दू" राष्ट्रके थे और यह बात पौराणिक युगमें भी हमारे पण्डितवर्गको अच्छी तरह मालूम थी। भविष्य-पुराणमें जहाँ म्लेच्छ-भाषाओंको संस्कृतकी ही शाखाएं कहा गया है, वहां यह बात स्पष्ट रूपसे कही गयी है और आगे लिखा है—

संस्कृतस्यैव वाणी तु भारतं वर्षमुह्यताम्।
अन्यखण्डे गता सैव म्लेच्छाह्यानंदिनोऽभवन्।
पितृ पैतर भ्राताच बादरः पतिरेवच।
सेति सा यावनी भाषा ह्यश्वश्चास्यस्तथा पुनः।
जानुस्थाने जैनु शब्दः सप्तसिन्धुस्तथैव च।
हप्तहिन्दुर्यावनीच पुनर्ज्ञेया गुरुंडिका॥ (प्रतिसर्ग पर्व अ०५)

ईरानी वैदिक आर्योंको "हिन्दू" नामसे ही जानते थे। यह एक बात हुई। दूसरी बात यह है कि किसी विदेशी और अज्ञात जातिको हम उसी नामसे जानते हैं जो नाम उनका उन लोगोंमें लिया जाता हो, जिन लोगोंद्वारा हमें उस जातिका परिचय मिलता है। इन दो बातोंसे हम यह कह सकते हैं कि दूर-दूरके राष्ट्र भी ईरानियोंके समान हमारे देश और जातिको हिन्दू ही कहते थे। यही नहीं, बल्कि सप्तसिन्धुओंके देशमें जो आदिम जातियां यत्र-तत्र बिखरी हुई थीं, वे भी अपनी-अपनी बोलीमें उसी भाषाशास्त्रके नियमसे आर्योंको हिन्दू ही कहती होंगी। इसके पश्चात् वैदिक संस्कृतसे ज्यों-ज्यों प्राकृत भाषाएँ उत्पन्न होने लगीं और इन सिन्धुओंके वंशजोंमें तथा जिन आदिम निवासियोंको इन्होंने अपने अन्दर मिला लिया, उनके वंशजोंमें उनका प्रचार होने लगा, त्यों-त्यों ये लोग बाहर देशवालोंके प्रभावके बिना ही अपने आपको हिन्दू कहने लगे होंगे। कारण संस्कृत "स" का रूप भारतीयेतर भाषाओंमें जिस तरह "ह" हो जाता है, उसी तरह वह भारतीय प्राकृतोंमें भी "ह" हो जाता है। इस प्रकार ग्रन्थान्तर्गत पक्के प्रमाणोंसे यह निर्विवाद सिद्ध है कि हमारा सबसे पहला नाम, यह कहिये कि हमारे पूर्व पुरुषोंने हमारे पालनेमें हमारा जो नाम रखा, वह सप्तसिन्धु या हप्तहिन्दू है और उस समयके समस्त ज्ञात संसारके सब देश हमें इसी "सिंधु" या "हिंदू" नामसे जानते थे।

यहांतक हम ग्रंथोंके आधारपर ही चले, पर अब अनुमान-

क्षेत्रकी थोड़ी सैर करेंगे। आर्योंका आदि वासस्थान कौन था—इस विषयमें अभी हमने कोई सिद्धान्त नहीं माना है। परंतु हिन्दुस्थानमें उनके प्रवेशके संबंधमें जो सिद्धांत बहुतोंने मान लिया है, उसे हम स्वीकार कर लें तो स्वभावतः यह जिज्ञासा होती है कि उन्होंने इस देशको अपनी मातृभूमि मानकर उसके दृश्योंके जो नाम रखे, उनकी उत्पत्ति कहाँसे हुई। क्या ये सब नाम उन्होंने अपनी भाषासे ही नयी शब्दसृष्टि करके रखे? जब हम कोई नया दृश्य देखते या किसी नवीन देशमें प्रवेश करते हैं, तब क्या यह बात सच नहीं है कि हम उस दृश्य या देशका वही नाम लेते हैं, जो नाम वहांके लोग लेते हों! नामके उच्चारणमें अपनी-अपनी उच्चारण-क्षमता या रुचिके अनुसार थोड़ा भेद हो सकता है, पर नाम तो वही रहता है जो वहाँके अधिवासियों-द्वारा लिया जाता है। हां, कभी-कभी ऐसा भी होता है कि अपने यहाँके पुराने प्रिय नामोंका उपयोग नये देशकी नयी वस्तुओंके लिये किया जाता है, खासकर जब नये उपनिवेश कायम किये जाते हैं। परन्तु यह तभी होता है जब पुराने देशमें वे नाम व्यवहृत होते हों जो नये देशकी नयी वस्तुओंको दिये गये। परन्तु इस अवस्थामें भी जिन वस्तुओंके जहाँ जो नाम हैं, उन्हींका उपयोग करनेकी रीति अधिक प्रचलित है। अब सप्तसिंधुके प्रदेशका विचार कीजिये। हम सब यह निश्चितरूपसे जानते हैं कि इस प्रदेशमें अनेक जातियाँ अलग-अलग रहती थीं। इनमेंसे कुछने नवागन्तुकोंके साथ अच्छा व्यवहार किया

और बहुतोंने इस नये देशके नये दृश्य आर्योंको दिखानेमें पथ-प्रदर्शकका काम किया, क्योंकि आर्य इस देशमें नये थे। विद्याधर, अप्सरा, यक्ष, रक्ष, गन्धर्व, किन्नर आदि सभी आर्य्यों के पूर्णतया शत्रु थे यह बात नहीं, क्योंकि अनेक स्थानोंमें इनके सुस्वभावादिका वर्णन है। इस प्रकार यह बहुत सम्भव है कि इस देशके आदिम निवासियोंने यहाँको महानदियोंके जो नाम इन्हें बताये, उन्हीं नामोंको संस्कृत रूप देकर इन्होंने स्वीकार कर लिया। जाति और भाषाको मिला लेनेकी इस प्रवृत्तिका विस्तार हमें आगे बहुत दिखाई देता है—शलकंटकटा, मलय, मिलिंद, अलसंदा (अलेकजण्ड्रिया), सुलूम (सेल्यूक्स) आदि शब्दोंको देखिये। यदि यह सच हो कि इस प्रकार अन्य भाषाओंके शब्दोंको संस्कृत रूप देकर अपनी भाषामें मिला लेनेकी प्रवृत्ति पहलेसे चली आती है, तो यह बहुत सम्भव है कि हमारे देशके आदिम निवासी "सिन्धु" नदीको "हिंदू" ही कहते हों और आर्यों की विशिष्ट उच्चारण-पद्धतिके कारण यह नाम "हिंदू" से "सिंधु" हो गया। इस प्रकार इस देश और इस देशमें रहनेवाली जातिका नाम अत्यंत प्राचीनकालसे "हिंदू" ही है—यहांतक कि "सिंधु" जो वैदिक नाम है, वह भी उसका उसके पीछेका रूप है। यदि "सिन्धु" शब्द इतना प्राचीन है कि इतिहासकालके अरुणोदयमें उसका मूल मिलता है तो "हिंदू" शब्द उससे भी इतना अधिक प्राचीन है कि प्राचीन गाथाएं भी उसके मूलका पता लगानेमें असमर्थ हैं।

सिन्धुओं या हिन्दुओं जैसे पराक्रमी लोग पंचनद या पञ्जाब-

के अन्दर ही बन्द रहें यह संभव नहीं था। पञ्चनदके आगेकी विशाल और उर्वरा भूमि ऐसी पराक्रमी जातिकी मानो प्रतीक्षा ही कर रही थी। एक-एक करके अनेक हिन्दू वंश इस सिन्धु-प्रदेशसे निकले। उनका उद्देश्य महान् था और उस उद्देश्यका चिह्न यज्ञीय अग्नि उनके साथ था। वह विशाल भूमि सघन बनसे परिपूर्ण थी। मनुष्योंकी बसती बहुत कम थी। इन्होंने जंगल काटकर साफ किया। कृषिका विस्तार हुआ। जनपद और राज्य निर्माण हुए। इन कामोंको करते हुए आर्योंने अपनी वैयक्तिक प्रवृत्ति तथा नवीन परिस्थितिके अनुसार ऐसी राज-नीति निर्मित और विकसित की, जिसमें केन्द्रीकरणकी व्यवस्था तो थी पर वह वैसी दृढ़ नहीं थी। समयके साथ-साथ ज्यों-ज्यों नये-नये उपनिवेश होने लगे और उनका परस्पर स्थानांतर बढ़ने लगा तथा वे कार्य अनेक उच्च संस्कृति-संपन्न भिन्न-भिन्न जाति-योंका समावेश अपनी संस्कृतिके अन्दर करने लगे, त्यों-त्यों इन भिन्न-भिन्न जनपदोंके राजनीतिक जीवनके केन्द्र भी बहुत कुछ भिन्न-भिन्न हो गये अर्थात् प्रत्येक राज्य अपनी राजनीतिका आप ही केन्द्र बनने लगा। नवीन स्नेह-संबंध स्थापित हुए और यद्यपि वे पुराने संबन्धोंको मिटा नहीं सके तथापि उनका प्रभाव बढ़ने लगा और कुछ काल बाद प्राचीन नाम भी बदल गये और नये नाम आये। कुछ लोग अपनेको कुरु, कुछ काशी और, कुछ मगध कहने लगे और मूलवंशका सिन्धू या हिन्दू नाम पहले इन नामोंसे दब गया और पीछे भूल-सा ही गया। यह बात नहीं

कि राष्ट्रीय और सांस्कृतिक एकताकी भावना ही नष्ट हो गयी हो, पर इस भावनाने नये नाम-रूप धारण किये। ऐसे नवीन नाम-रूपोंमें राजनीतिशः सबसे महत्वपूर्ण संस्था "चक्रवर्त्ती" की थी। अंतको हिन्दुओंने एक देश और एक राष्ट्र स्थापित करनेका जो महान् उद्देश्य धारण किया था उसकी भौगोलिक मर्यादा स्थापित हो गयी, जब राजकुमार रामचन्द्रने विजयी होकर लंकामें प्रवेश किया और हिमालयसे लेकर समुद्रपर्यन्त समग्र देश एक राजछत्रके नीचे ले आये। जिस दिन विजयका अश्व बेरोक अयोध्यामें लौट आया और आदर्श नृपति राजा रामचन्द्रके सिंहासनपर सार्वभौम राजका श्वेत छत्र लगा तथा केवल आर्यवंशके राजाओंने ही नहीं प्रत्युत दक्षिणके हनूमान-सुग्रीव-विभीषणने भी उनका सार्वभौमत्व स्वीकार किया—वही दिन हमारी हिन्दू-जातिका वास्तविक जन्मदिन था। वास्तवमें वह हमारा राष्ट्रीय दिन था; क्योंकि आर्य और अनार्य दोनों एक होकर एक राष्ट्र बन गये। पूर्वके लोगोंने इसके पूर्व जो कुछ प्रयत्न किये, उन सबका एकीकरण हुआ और राजनीतिशः उन प्रयत्नोंकी पूर्णता हुई। सबका एक लक्ष्य हुआ, एक राष्ट्रीय झंडा हुआ, एक ही उद्योग हुआ जिसके लिये इसके बादके लोग पीढ़ी-दर-पीढ़ी जाने-बेजाने लड़ते और अपने प्राणोंको उत्सर्ग करते रहे।

एकीभवनकी कोई भी भावना अपने लिये यथाउचित व्यापक और पूर्ण बोधक संज्ञा या नाम पाकर बहुत दृढ़ हो

जाती है। जिस विशाल एकीभवनके उद्योगमें सिन्धुसे समुद्र पर्यन्त इस संपूर्ण महादेशका समावेश हुआ था और इसे एक राष्ट्र बना देनेका जिसका लक्ष्य था, उसके लिये "आर्यावर्त" और "ब्रह्मावर्त" पूर्ण बोधक नाम नहीं थे। प्राचीन ग्रन्थकारोंके लेखानुसार आर्यावर्त वह देश था जो हिमालय और विंध्याके बीचमें था—"आर्यावर्तः पुण्यभूमिर्मध्यं विन्ध्यहिमालयोः" जिस अवस्थामें यह नामकरण हुआ उस अवस्थामें यह ठीक भी था; परन्तु जब आर्यावर्तवासिनी आर्य-जातिने आर्य और अनार्य दोनोंको मिलाकर एक राष्ट्र निर्माण कर दिया और नतशिखर विन्ध्याद्रीके भी पार दूर दूरतक अपनी संस्कृतिका प्रचार कर लिया, तब ऐसी जातिके लिये यह नाम बहुत ही अपूर्ण था। आवश्यकता थी एक ऐसे नामकी जो भारतीय राष्ट्रकी व्यापक भावनाका बोधक हो। अत्यधिक रूपमें यह प्रयोजन तब सिद्ध हुआ जब भरत-वंशका समस्त पृथिवीपर राज हुआ। यह भरत कौन थे—यह वैदिक थे या जैन थे—अथवा यह कब हुए इत्यादि बातोंके संबन्धमें कल्पना-सागरमें गोते लगाना छोड़ इतना ही जानना हमारे लिये यहाँ पर्याप्त होगा कि आर्यावर्त और दक्षिणापथके लोगोंने अपनी मातृभूमिका यह नाम केवल स्वीकार ही नहीं किया, प्रत्युत इस नामसे अपनी मातृभूमि और अपनी संस्कृतिके साम्राज्यको पुकारनेमें उन्हें स्नेहपूर्ण आनंद आता था। ज्यों-ज्यों दक्षिणकी ओर अन्तरिक्षका पट खुल गया, त्यों-त्यों हम देखते हैं कि जातिके गुरुत्वाकर्षणका केन्द्र सत-

सिन्धुओंके प्रदेशसे हटकर गंगा-तटके प्रदेशमें आ गया और सप्तसिन्धु, आर्यावर्त, या दक्षिणापथ—ये नाम दब गये तथा उनके स्थानमें भरतखंड नाम प्रचलित हुआ जो राजनीतिके विचारसे बड़ा ही भव्य नाम था और जिसमें आसेतु हिमाचल समस्त देश-का अन्तर्भाव होता था। हमारे रष्ट्रकी परिभाषा करनेका जो प्रयत्न उस समय किया गया है जब राष्ट्रकी यह भव्य भावना हमारे पूर्वाचार्योंके अन्तःकरणमें उदय हो रही थी, उससे यह बात स्पष्ट हो जाती है। एक राष्ट्रके नाते हमारी स्थितिकी जैसी उत्तम व्याख्या विष्णुपुराणमें है, वैसी अन्यत्र कहीं नहीं मिलती। विष्णुपुराणमें है—

उत्तरयत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम्।
वर्षं तद्भारतं नाम भारती यत्र संततिः ॥

परन्तु यह नवीन भारतवर्ष नाम हमारे पालनेका सिन्धु या हिन्दू नाम बिलकुल ही दबा नहीं सका, न हमसे वह प्रेम ही भुला सका जो उस महा नदी सिन्धुपर हमारा था, जिसकी गोदमें बैठकर हमारे पूर्वाचार्यों और पूर्वजोंने उसके स्तनसे जीवन-रसका पान किया था। सिन्धु-नदीके किनारे-किनारे हमारे जो सीमा-प्रान्त थे उनका नाम अब भी सिन्धुराष्ट्र रहा। और संस्कृत-साहित्यमें सर्वत्र "सिन्धुसौवीर" हमारे राष्ट्रके अन्तर्गत और प्रधान अंगस्वरूप माने गये हैं। महाभारतके उस महान् भारतीय युद्धमें सिन्धुसौवीरका राजा एक

प्रधान पुरुष था, और भरतवंशके साथ उसका अति निकट सम्बन्ध था। सिन्धुराष्ट्रकी चतुःसीमा समय-समयपर बदलती रही है तो भी मुलतानसे लेकर समुद्रतक जो भाषा वहाँके लोग बोलते थे और अब भी बोलते हैं उससे वे स्वयं एक जाति मालूम होते हैं और उनका 'सिन्धी' नाम अबतक यह स्मरण दिलाता है कि जो लोग यह भाषा बोलते हैं, वे सिन्धु हैं और हमारे भारतीय राष्ट्रके अन्दर उनका एक विशिष्ट स्थान है। यद्यपि भरतखंड नामने हमारे राष्ट्रका पालनेका नाम दबा दिया तथापि विदेशीय राष्ट्रोंने इसकी उपेक्षा ही की और हमारे सीमा-प्रान्त प्राचीन नामोंसे ही जाने जाते थे; और हमारे नजदीकी पड़ोसी अवेस्तानुयायी ईरानी, यहूदी, यूनानी तथा अन्य लोग हमें हमारे प्राचीन सिन्धु या हिन्दु नामसे ही जानते थे। वे इस नामका उपयोग केवल सिन्धु-नदीके तट प्रदेशको जनानेके लिये ही नहीं करते थे, बल्कि समस्त देशको इसी नामसे जनाते थे, जिसमें प्राचीन सिन्धु अन्य जातियोंके साथ मिलते-मिलाते फैल गये थे। अवेस्तानुयायी ईरानी हमें हिन्दू जानते और यूनानी कर्कश हकारको त्याग 'इंडो' और यूरोनियोंके द्वारा लगभग सारा यूरोप और पीछेसे अमेरिका भी हमें हिन्दू या इंडियन कहने लगा। जो ह्युएन सांग हमारे साथ इतने कालतक रहा वह भी हमें "शिन्तु" या "हिन्तु" ही कहता है। कुछ थोड़े उदाहरणोंको छोड़कर जैसे पारथियन लोग अफगानिस्तानको श्वेत भारत कहते थे, अन्यथा शायद ही कभी

विदेशियोंने हमारे पालनेका नाम भुलाकर नये नाम "भारत"का प्रयोग किया हो। आज भी सारा संसार हमें "हिन्दू" और हमारे देशको "हिन्दुस्थान" ही जानता है, मानो हमारे वैदिक पूर्वजों-द्वारा स्वीकृत नामकी रक्षा कर रहा है।

पर नामका तो दस्तूर ही यह है कि जिस किसीका नाम हो वह उसकी इच्छापर नहीं बल्कि दूसरोंकी इच्छापर निर्भर करता है। हम अपना चाहे जो नाम रखना पसन्द करें, नाम माना जायगा वही जो और लोग पसन्द करेंगे। नामका प्रयोजन भी तो यही है। हम अपने आपको बिना नाम और रूपके जानते ही हैं। पर जब हमारा सम्बन्ध दूसरोंके साथ होता है, स्नेह-सम्बन्ध हो या विरोध-सम्बन्ध, तब नामकी जरूरत होती है। इसमें दोका सम्बन्ध होता है। यदि संसार किसी आचार्यका नाम "अष्टावक्र" और किसी मसखरेका नाम "मुल्ला दोप्याजा" रखना ही पसन्द करता है, तो नामवालेकी चाहे जो इच्छा हो, संसारको तो वही नाम स्मरण रहेगा जो उसने पसन्द किया है। इस तरह संसार हमारा जो नाम रखता है, वह यदि हमारी रुचिके विरुद्ध न हो तो ऐसे नामका अन्य सब नामोंको दबा देना बहुत ही अधिक संभवनीय है। परन्तु यदि संसार ऐसा नाम रखता है, जिससे हमारा पूर्व गौरव और प्रेम सूचित होता है तो ऐसा नाम निश्चय ही हमारे अन्य नामोंको भुलाकर बना रह सकता है। यह बात और इसके साथ वह अवस्था जिसमें बाहरी संसारके साथ पहले-पहल हमारा सम्बन्ध हुआ और पीछे उसके साथ घोर

विरोध हुआ, इन दो बातोंसे हमारा हिन्दू नाम फिर एक बार आगे आया और इतने जोरसे आगे आया कि प्यारा "भरतखंड" नाम भी उसके पीछे पड़ गया।

---

(३)

"हिन्दुस्थान और म्लेच्छस्थान"

यों तो बौद्ध-धर्मका उदय होनेके पूर्व भी हिन्दुस्थानका अन्य देशोंसे सम्बन्ध था और हिन्दुओंके सार्वभौम उद्योगका इतना विस्तार हो गया था कि हमारे स्वदेश-भक्त कवि और धर्मशास्त्र-वक्ता अधिकारके साथ यह कह सकते थे कि—

एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्व मानवाः ॥ (मनु)

तथापि यहां जिस बातका हम विचार कर रहे हैं, उसके लिये बौद्ध-धर्मके उदयके पश्चात् ही भारतके सार्वराष्ट्रीय जीवनका विचार कर्तव्य है। कारण, इसी समयके लगभग राजनीतिक उद्योगके विस्तारकी सीमा हो चुकी थी और देशके अन्दर कोई ऐसा काम बाकी न था जो न किया गया हो; इसलिये स्वभावतः ही इस उद्योगका स्रोत देशके बाहर भी प्रवाहित होने लगा और भारतके बाहरके देशोंसे व्यवहार भी खूब बढ़ने लगा। इसके पूर्व इतने जोरके साथ ऐसा प्रवाह नहीं हुआ था,

न विदेशोंसे इतना घनिष्ठ सम्बन्ध ही हुआ था। यही नहीं, बल्कि बाहर देशवाले भी आ-आकर पहलेसे अधिक उद्दण्डता और प्रभुताके साथ हमारा द्वार खटखटाने लगे। इस राजनीतिक परिवर्तनके साथ-साथ बौद्ध-धर्मने भी भारतवर्षको उस समयके ज्ञात संसारका हृदयस्थान बना दिया। मिश्रसे लेकर मेक्सिको-तक असंख्य जनसमुदाय सिन्धुस्थानको अपने देवताओं और देवतुल्य मनुष्योंका वासस्थान मानने लगा। भिन्न-भिन्न देशों-से सहस्रों यात्री यहाँ आने लगे और सहस्रों विद्वान, उपदेशक, साधु और सन्त इस देशसे बाहर जाकर नाना देशोंमें विचरण करने लगे। परन्तु बाहर-देशवाले हमें हमारे "सिन्धु" या "हिन्दू" इस प्राचीन नामसे ही जानते और पुकारते थे, इसलिये लोगोंका यह आना-जाना हमारे राष्ट्रीय नामोंमेंसे इसी नामको सर्व-प्रधान बनानेमें ही सहायक हुआ। उन भिन्न-भिन्न राज्योंके साथ, जो हमें हिन्दू नामसे जानते थे, जो राजनीतिक पत्रव्यव-हार होता था, उसमें पहले "भरतखण्ड" के साथसाथ "हिन्दु-स्थान" और पीछे अकेले "हिन्दुस्थान" शब्दका ही प्रयोग होने लग गया होगा।

बौद्ध-धर्मके उदयसे संसारमें इस नामका इतना प्रचार हो गया, पर आश्चर्यकी बात यह है कि उस बौद्ध-धर्मके अस्तसे इस नामका और भी अधिक प्राधान्य हो गया।

बौद्ध-मतका पतन होनेका जो सबसे प्रधान कारण है, हम समझते हैं, उसकी ओर विद्वानोंका उतना ध्यान नहीं गया है

जितना जाना चाहिये। यहाँ विस्तारके साथ इस विषयकी मीमांसा नहीं की जा सकती, पर संक्षेपमें कुछ साधारण बातें कहे देते हैं, जिनका विस्तारके साथ विवेचन पीछे किसी अवसरपर किया जायगा। हिन्दू बौद्धमतका बहिष्कार करनेके लिये जो तैयार हो गये, उसका कारण क्या केवल दार्शनिक मतभेद ही था? केवल दार्शनिक मतभेदसे ही ऐसा हुआ हो, यह सम्भव नहीं है; क्योंकि दार्शनिक मतभेद तो सदासे चले आते हैं और दोनों प्रकारके मतोंका साथ-साथ ही प्रचार भी होता चला आया है। तो क्या बौद्धोंके विहारोंमें पीछेसे जो अनाचार और व्यभिचार होने लगा, उससे ऐसा हुआ? यह भी एकमात्र कारण नहीं हो सकता; क्योंकि यदि अनेक विहारोंमें उन व्यभिचारियोंका जमावड़ा हुआ था, जो दूसरोंके परिश्रमसे उपार्जित वस्तुओंपर जीवन निर्वाह करते और परायी सम्पत्ति अनाचारमें फूँक डालते, तो उसके साथ-साथ उन महान् तपस्वी और ज्ञानी अर्हतों और भिक्षुओंकी परम्परा भी तो अभीतक जारी थी। और व्यभिचार केवल बौद्ध-विहारोंमें ही तो नहीं था। ऐसे-ऐसे दोषोंका इतना भयानक परिणाम कि भारतवर्षसे बौद्धोंकी सत्ता ही उठ गयी, कदापि न होता; यदि बौद्धोंके प्रचारका राजनीतिक परिणाम राष्ट्रकी जीवनीशक्ति, और तो क्या, हमारी जातिके अस्तित्वके लिये इतना विघातक न होता। यह जैसा शोकपर्यवसायी नाटक हुआ है, उसके लिये शाक्यसिंहके जीवनकी ही एक घटना जितनी उत्तमताके साथ विष्कंभकका काम देगी,

उतनी किसी कविकी कोई कल्पना नहीं दे सकती। शाक्यसिंह जिस समय अपने बौद्ध-सम्प्रदायकी नींव दे रहे थे, उसी समय उन्होंने यह खबर सुन ली कि शाक्योंके उस छोटेसे प्रजातन्त्र-राजकी क्या गति हुई। वे अपनी जातिके भूषणभूत नरवीरोंको अपने भिख्खू-सम्प्रदायकी दीक्षा दे चुके थे और शाक्य-प्रजातन्त्र वीरोंसे विहीन होकर दूसरोंके अधीन हो गया। और यह घटना शाक्यसिंहके जीवनकालमें ही हुई! उन्हें जब यह खबर मालूम हुई, तब उसका उन 'बुद्ध' पर कोई असर नहीं हुआ! शताब्दियां उलट गयीं; शाक्योंके राजा सब राजाओंके राजा—लोकजित हो गये। छोटे शाक्यराजकी चतुःसीमा विस्तृत हो गयी, वह भारतवर्षकी चतुःसीमा हो गयी; और कपिलवस्तु-के छोटे प्रजातन्त्रकी जो दुर्गति हुई, वही भारतवर्षकी भी हुई—भारतवर्ष आक्रमणकारी योद्धाओंका शिकार हुआ—शाक्य तो अपने ही जातिभाइयोंके शिकार हुए, पर भारतवर्ष लीचियों और हूणोंका शिकार हुआ। यदि बुद्ध-भगवानको इसकी खबर मिले—किसी तरहसे उनके पास यह खबर पहुँचायी जा सके, तो इससे भी वे वैसे ही उदासीन रहेंगे जैसे कपिलवस्तुकी खबर सुनकर उनके चित्तपर कोई असर नहीं हुआ। पर सब हिन्दू राजनीतिक दासत्वके जहरका प्याला शांतिके साथ अपने होठोंसे कैसे लगा सकते हैं? जिन असभ्य और बर्बर जातियों-की क्रूर हिंसावृत्तिका उन्हें सामना करना पड़ा, वे अहिंसा और आध्यात्मिक बन्धु-भावकी मधुर बातोंसे शांत होनेवाले नहीं थे।

इनके फ़ौलादी खड्गकी धार मृदु तालपल्लवों और सुस्वर मन्त्रोच्चारसे मन्द होनेवाली नहीं थी। हम उस विशाल विश्व-बन्धुत्वको और उसके दैवी संकल्पको भुलाना नहीं चाहते—उसपर अभियोग लगानेकी बात तो दूर रही। पर उसका जो परिणाम सामने दिखायी देता है, वह इतना प्रत्यक्ष है कि इतिहासका कोई विद्यार्थी उससे अपना ध्यान नहीं हटा सकता। हम जानते हैं, हमारे इस कथनके प्रतिवादमें अनायास ही यह कहा जा सकता है कि भारतवर्षमें जो सबसे बड़े और सबसे शक्तिशाली राजा और सम्राट हुए, वे बौद्धकालमें ही हुए। पर यह कौन कहता है? यूरोपियन कहते हैं और हमारे वे लोग कहते हैं, जिन्होंने बे-जाने यूरोपियनोंके विचार और उन विचारोंके साथ उनके कुसंस्कार भी अपने दिमागमें भर लिये हैं। एक समय था, जब भारतीय स्कूलोंमें पढ़ाया जानेवाला भारतका इतिहास मुसलमानोंके आक्रमणसे ही आरम्भ होता था, क्योंकि उस समय अंग्रेज लेखक हमारे पूर्वकालीन जीवनकी और कोई बात प्रायः नहीं जानते थे। अब इधर कुछ कालसे यूरोपको हमारे बौद्धकालीन इतिहासकी भी बहुतसी-बातें मालूम हुई हैं और इसलिये हम यह मान बैठते हैं कि हमारे इतिहासका आदि और सर्वोत्तम अंग यही है। पर बात यह है कि यह इतिहासका न तो आदि है न अन्त। बुद्ध-धर्म-संघके प्रति हमारा जितना प्रेम और आदर है, उससे अधिक और किसीका क्या होगा? बुद्ध-धर्म और संघ हमारे थे। उनका गौरव हमारा है

और उनका पतन भी हमारा है। देवानां प्रियं अकोश बड़े थे, बौद्ध भिक्षुओंने जो कार्य किया, वह उससे भी महान् था। पर इनसे यदि अधिक नहीं तो इतने ही महान् और पवित्र तथा इनसे अधिक विचारपूर्ण पराक्रम इनके पूर्व हो चुके थे और उन्हीं पराक्रमोंने इन्हें भी इतना पराक्रमी बनाया था। इसलिये हम इस बातको नहीं मानते कि हमारी जातिका राजनीतिक ओज और पुरुषोचित पराक्रम मौर्यवंशके साथ आरम्भ हुआ और उसीके साथ उसका अन्त हुआ—या यह बौद्ध-मत अंगीकार करनेका ही परिणाम था। बौद्ध-मतने भी विजय प्राप्त की है, पर वह विजय उस लोककी है, इस लोककी नहीं, जहाँ जिस-तिसके हाथमें फौलाद है और तृष्णा इतनी बलवान और वास्तविक है कि वह आकाश-गंगाके मनोहर दृश्यसे नहीं बुझ सकती। ये बातें हमारे देशभक्तों और विचारशील पुरुषोंके ध्यानमें आ गयी होंगी, जब हूण और शक ज्वालामुखीकी अग्निज्वालाओंके समान इस देशमें फैलकर इसे तहस-नहस करने लगे। हिन्दुस्थानवासियोंने देखा कि हमारी जातिके आदर्श—हमारे राज-सिंहासन, हमारे परिवार और हमारे देवतातक पैरों-तले कुचले जा रहे हैं, हमारी धर्मभूमि उजड़ रही है और बर्बरोंके झुण्ड आकर हमें लूट रहे हैं। भारतवासियोंकी सभ्यता और संस्कृतिको देखते, भाषा, धर्म, तत्वज्ञान तथा दया-दाक्षिण्यादि मनुष्योचित गुणोंमें इन आक्रमणकारियों की अवस्था अत्यन्त हीन थी। पर केवल भौतिक बलमें वे श्रेष्ठ थे—बल ही उनका सर्वस्व था

—ढाल और तलवार! यही उनका मंत्र था। इसका फल स्पष्ट था। यह बात भी स्पष्ट थी कि बौद्धदर्शनमें इस नवीन और भयानक "द्वैत" का, इस "अग्नि और खड्गके" धर्मशास्त्रका कोई जवाब नहीं था। इसलिये हमारी जातिके नेताओंको इस अपवित्र अग्निका सामना करनेके लिये यज्ञीय अग्निको फिरसे प्रज्वलित करना पड़ा और फौलादके लिये उसे कालीकी वेदीकी सानपर चढ़ाकर तीक्ष्ण करनेके लिये वेदोंकी खानें खोलनी पड़ीं, जिसमें कालदेवता 'महाकाल' संतुष्ट हों। उनका विचार भी ठीक उतरा। हिन्दू क्षात्र तेजने वह विजय प्राप्त की, जो चिरस्मरणीय रहेगी। विक्रमादित्यने विदेशियोंको भारत-भूमिसे मार भगाया और ललितादित्यने उनके अड्डोंमें घुसकर तातरीसे मंगोलिया-तक उनका देश पादाक्रान्त करके उन्हें अच्छी तरह दण्ड दिया। वीरताने वह काम किया जो वचनोंकी गंभीरता न कर सकी। फिर एक बार राष्ट्र उस गौरवको प्राप्त हुआ, जिसका प्रकाश जीवनके सभी विभागोंपर पड़ा। काव्य और तत्वज्ञान, कला और शिल्प, कृषि और वाणिज्य, विचार और आचार सबमें वह जीवन-ज्योति आ गयी, जो स्वाधीनता, सामर्थ्य और विजयकी अनुभूतिसे ही जगमगाया करती है। पूर्ण क्रांति हुई—कोई कसर नहीं। "वैदिक धर्म" और "वेदोद्धार"की पुकार मची। राष्ट्रकी यह पुकार बढ़ती ही गयी, उसका जोर बढ़ता गया, क्योंकि यह राजनीतिक आवश्यकता ही थी।

बौद्ध-मतने ही सर्वप्रथम और सबसे महान् प्रयत्न, विश्वधर्म प्रचारका किया। "हे भिक्खुओ, संसारकी दशों दिशाओंमें जाओ और साधुताके विधानका उपदेश करो।" सचमुच, वह साधुता-का ही विधान था, उसमें और कोई गुप्त हेतु नहीं था, उसमें भूमि या अधिकारका कोई लोभ नहीं था; उसने काम भी बहुत बड़ा किया, पर वह पाशविक मनोविकारों या राजनीतिक महत्वाकांक्षाओं अथवा व्यक्तिगत स्वार्थोंके बीज मानवी मनोभूमिसे उखाड़ नहीं सका, जिससे हिन्दुस्थान शस्त्र नीचे रखकर निश्चिन्त रह सकता। फिर भी, संसारकी शिक्षाके लिये हिन्दुस्थानने अपनी यह इच्छा घोषित की कि, "शस्त्रकी विजयकी अपेक्षा शांति और साधुताकी विजयसे ही हमें अधिक आनन्द होगा।" इसके लिये उसने क्या नहीं किया? इतनी उदारता और महत्ता दिखायी कि अधिकार और संपत्तिकी लालसा उसे देखकर हँसने लगी! हिन्दुस्थानके राजाओंने ऐसी ऐसी राजाज्ञाएं निकालीं कि घोड़े और हाथियोंको जो जल पिलाया जाय, वह छानकर पिलाया जाय, जिसमें उन जलीय जीवोंकी रक्षा हो। समुद्रके मध्यमें अनाज फेंकनेके स्थान बनाये गये थे, जिसमें समुद्रकी मछलियोंको उत्तम आहार मिले। परन्तु मनुष्योंने अभीतक मछली खाना नहीं छोड़ा था, न मछलियोंने ही एक दूसरेको खा जानेकी वृत्ति छोड़ी थी। हिन्दुस्थानने स्वयं अपनी हिंसा कराकर हिंसाकी हिंसा कर डालनेमें बड़ी महत्ता दिखायी—और अन्तमें यह मालूम किया कि लातोंके देवता बातोंसे नहीं मानते। जब-

तक इस संसारमें और राष्ट्रीय तथा जातीय भेद इतने बलवान हैं कि मनुष्योंको पशु बना देते हैं, तबतक हिन्दुस्थानको यदि जीना है, चाहे वह जीवन राजनीतिक हो या आध्यात्मिक, तो राष्ट्रीय और जातीय अखंडतासे उत्पन्न होनेवाले बलकी उपेक्षा करनेसे काम नहीं चल सकता। इस प्रकार तत्कालीन देश-नेताओंका जी विश्वबन्धुत्वकी इन बातोंसे ऊब गया और वे कहने लगे—

ये त्वया देव निहता असुराश्चैव विष्णुना।
ते जाता म्लेच्छरूपेण पुनरद्य महीतले॥
व्यापादयन्ति ते विप्रान् घ्नंति यज्ञादिकाः क्रियाः।
हरन्ति मुनिकन्याश्च पापाः किं किं न कुर्वति॥
म्लेच्छाक्रांते च भू लोके निर्वषट्कार मंगले।
यज्ञयागादि विच्छेदाद्देव लोकोऽवसीदति॥ (गुणाढ्य)

और जिन जंगली शकों और हूणोंने भिक्षुवेश धारण किये और शस्त्र त्यागकर हाथमें तुलसी-माला लिये अहिंसाव्रती इस सुरम्य देशको उजाड़ डाला था, उन्हें इन्होंने सिन्धु नदीके पार मार भगाया और सुदृढ़ तथा अखंड राष्ट्रकी स्थापना की। तब स्वभावतः ही हमारे देश-नेताओंके ध्यानमें यह बात भी आ गयी कि इस नवीन राष्ट्रीय राज्यके पीछे यदि वैसे ही राष्ट्रीय धर्मका बल हो तो फिर राष्ट्रकी शक्तिका क्या कहना है।

और एक बात ध्यानमें रखनेकी यह है कि हम और हमारे शत्रुओंके बीच जितनी बातें समान होंगी, उतना ही उनका

सामना करनेका हमारा बल कम होगा। जिस शत्रुके साथ हमारा किसी भी बातमें मेल नहीं है, उसका हम घोरतम विरोध कर सकते हैं, जैसे जिस मित्रके साथ हमारा हर बातमें मेल हो और हम जिसकी प्रत्येक बातको अपने अन्दर पाकर उसकी कदर करते हैं, उस मित्रके साथ हमारा सबसे अधिक प्रेम होता है। हिन्दुस्थान विश्वबन्धुत्व और अहिंसाके नशेमें इतना चूर हो गया था कि पाप, अपराध और आक्रमणका प्रतीकार करनेकी शक्ति भी उसकी नष्ट हो गयी थी, ऐसी अवस्थामें अन्यायकी तरफसे देशके चित्तमें अत्यंत तीव्र तिरस्कार उत्पन्न करके उसके प्रतीकारकी अदम्य शक्तिका संचार करनेके लिये यह आवश्यकता हुई कि जिनके साथ हमें लड़ना है, उनसे हर बातमें विषमता उत्पन्न की जाय, दोनोंके बीच उपासना-मार्गकी जो समानता थी, वह भी नष्ट की जाय; क्योंकि इस उपासनामें अपने उन सहधर्मियोंको गले लगाना पड़ता था, जिन्होंने उक्त प्रकारसे देशका गला घोंटा था। ऐसे विश्वधर्मको लेकर क्या करना है, जो राष्ट्रोंकी भयानक तामसी वृत्ति और पाशविक अहंकारका दमन करनेके बदले हिन्दुस्थानको निश्चिन्त और बेखबर बनाकर उन राष्ट्रोंकी अधिकार-लालसाको और भी उत्तेजित कर देता है? इसलिये उस बल और वीर्यपर ही भरोसा किया गया, जो राष्ट्रीय आत्मचैतन्यसे ही उत्पन्न हुआ करता है। इसके पूर्व वह अहिंसाके मार्गपर चलनेके लिये अपना सर्वस्व दे चुका था, पर उससे उसकी सिद्धि नहीं हुई!

बौद्ध-मतके विश्वबन्धुत्वके भावका तब तो और भी जोरसे विरोध होने लगा, जब बौद्ध भारतवर्षमें बौद्ध राज्यकी पुनः स्थापना करनेकी चेष्टा करने लगे। राष्ट्रीय भावको यह स्वीकार नहीं था कि राष्ट्रीय स्वाधीनता नष्ट हो और किसी विदेशीय विजेताको हम अपने राजाधिराज मानें। परंतु यदि यह विदेशीय आक्रमणकारी कोई बौद्धमतावलंबी हुआ, तब तो यह निश्चय ही था कि भारतीय बौद्ध उसके साथ गुप्त सहानुभूति रखते, जैसे कैथोलिक संप्रदायके स्पैनिश उद्योगियोंको इंग्लैण्डकी राजगद्दी-पर किसी कैथोलिक संप्रदायके वंशको स्थापित करनेके उद्योगमें इंग्लैंडके कैथोलिकोंसे अवश्य ही सहायता मिलती थी। यह केवल निराधार तर्ककी बात नहीं है। प्राचीन ग्रंथोंमें इस बातके प्रमाण हैं कि कई बार कुछ विदेशी बौद्ध राजाओंने भारतमें बौद्ध राज्य स्थापित करनेके उद्देश्यसे भारतपर आक्रमण भी किया था। उस जमानेके इतिहासका विस्तारपूर्वक विवेचन करनेका यह स्थान नहीं है। पर यहां एक पुराणमें वर्णित ऐसे एक आक्रमणके वर्णनकी ओर निर्देशमात्र कर सकते हैं। यह वर्णन कुछ तो अलंकारात्मक और कुछ वास्तविक है। यह "आर्य-देशजों" पर न्यनपति (हूणोंके राजा)-के आक्रमणकी कथा है। पौराणिक पद्धतिसे बताया गया है कि किस प्रकार "हहा" नदीके किनारे एक महान् युद्ध हुआ था और किस प्रकार चीनसे बौद्ध सेना आयी थी ("चीनदेशमुपागम्य युद्धभूमिरकारयत्") और किस प्रकार कितने ही अन्य बौद्ध राष्ट्रोंने उसको सहा-

यताके लिये अपनी अपनी सेनाएँ भेजी थीं—

श्यामदेशोद्भवा लक्षास्तथा लक्षाश्च जावकाः।
दशलक्षाश्चीनदेश्या युद्धाय समुपस्थिताः॥

और कैसा घमासान युद्धके होनेके पश्चात् बौद्ध हारे और इस हारसे उन्हें कितनी जिल्लत उठानी पड़ी। उन्हें हिन्दुस्थानके सम्बन्धमें अपने सब गुप्त राजनीतिक हेतु प्रकट रूपसे त्याग देने पड़े और यह प्रतिज्ञा करनी पड़ी कि अब हम लोग किसी राजनीतिक हेतुसे भारतमें प्रवेश न करेंगे। पर धर्मसहिष्णुता जिस भारतकी विशेषता है, उस भारतसे बौद्धोंको व्यक्तिशः कुछ भी भय नहीं था; पर भारतके राष्ट्रीय जीवन और स्वातंत्र्यपर चढ़ाई करनेका स्वप्न देखना उन्हें परित्याग करना पड़ा।

सर्वैश्च बौद्धवृन्दैश्च तत्रैव शपथं कृतम्।
आर्यदेशं न यास्यामः कदाचिद्राष्ट्रहेतवे॥ (भविष्यपुराण—प्रतिसर्ग पर्व)

और इस प्रकार हमारे आचार-विचारकी जो विशेषताए थीं, वे फिरसे प्रकट होने लगीं—वर्णाश्रमव्यवस्था बौद्धोंके कालमें भी नष्ट नहीं हुई थी और अब तो उसकी लोकप्रियता इतनी बढ़ गयी कि बड़े-बड़े राजा-महाराजा "वर्णव्यवस्थापनपरः" (सोनपत-ताम्र लेख)—"वर्णाश्रमव्यवस्थापनप्रवृत्तचक्रः" (मधवत ताम्रपट) कहलानेमें अपनी बड़ी प्रतिष्ठा समझते थे। इस वर्णाश्रम-व्यवस्थाका इतना आदर बढ़ा कि मानों उसीमें सारी राष्ट्रीयता समा गयी। हमारे और विदेशियोंके बीच जो

भेद निर्दिष्ट किया गया, वह यही तो था कि—

चातुर्वर्ण्यं व्यवस्थानं यस्मिन्देशे न विद्यते ।
तं म्लेच्छदेशं जानीयादार्य्यावर्तस्ततःपरः ॥

इसीके एक कदम आगे बढ़कर यह किया गया कि हमारे लोग समुद्रपारके उन देशोंमें न जायँ, जो हमारे रहने योग्य नहीं हैं और जहाँ हमारे आचार-विचारका आदर नहीं होता; उलटे विरोध होता है और इसलिये जहाँ हम अपने आचार-विचारोंकी रक्षा न कर सकेंगे। बौद्ध-मतसे जो चित्त हट गया, उसकी यह तद्विरुद्ध प्रतिक्रिया थी और अवश्य ही यह अति मात्रामें थी। तथापि, यदि राजनीतिक दृष्टिसे विचार किया जाय तो इसका अर्थ समझमें आ जाता है; क्योंकि आज भी तो इस बातका आन्दोलन होता रहता है कि जिन देशोंमें हमारी जातिका अपमान होता है, उन देशोंमें हमारे यहाँके लोग न भेजे जाय—उपनिवेशोंमें भारतीयोंका भेजा जाना बन्द किया जाय।

इस प्रकार भारतवर्षसे बौद्धमत जो उठ गया, उसका कार्य-कारण राजनीतिक और राष्ट्रीय प्रयोजन था। बौद्ध-मतका कोई भौगोलिक केन्द्र नहीं था। बौद्धमतको स्वीकार करके भारतवर्षने अपना वह भौगोलिक केंद्र खो दिया था और अब फिरसे उसकी स्थापना करनी थी। जब राष्ट्रका आत्म-चैतन्य पूर्ण रूपसे जागा और उसे स्व-परके भेदाभेदकी पूरी पहचान हुई, तब उसने यह भेद निर्दिष्ट भी कर दिया और अपनी स्थिति अपने सामने ऐसी स्पष्ट कर दी कि उसे यह मालूम हो कि हम कहाँ हैं और संसार

भी जाने कि यह एक जाति है, एक राष्ट्र है, केवल यही नहीं, यह एक देश है और एक राज्य है। दक्षिण ओर हमारे देशकी स्वाभाविक सीमा आप ही बँध चुकी थी। दक्षिण-महासागरसे इस सीमाकी शोभा और पूर्णता निर्मित थी। "समुद्र-रचना" का दृश्य देख देखकर हमारे कवि और देशभक्त सदासे ही अपने नेत्रोंको तृप्त किया करते थे। परन्तु उत्तर-पश्चिम ओर जातियोंका संमिश्रण बड़े बेढंगे तौरपर हो रहा था तथा हमारे देशकी सीमा भी सदा अस्थिर रहा करती थी। इसलिये इस ओर सीमा निर्दिष्ट करनेकी आवश्यकता यदि स्वतः स्थापित होनेके इस उद्योगमें हमें प्रतीत न होती, तो निश्चय ही यह बड़े आश्चर्यकी बात होती। उज्जैनके "महाकाल" के अधिष्ठानमें जिन्होंने स्वराष्ट्र-स्थापनका इतना महान् उद्योग किया, वे इस सीमाको निर्दिष्ट करनेकी आवश्यकताकी उपेक्षा नहीं कर सकते थे। उत्तर-पश्चिमकी यह सीमा वेगवती, साथ ही गम्भीर स्रोतस्वती सिन्धु नदीके सिवाय और क्या होती? जिस दिन हमारे पूर्वज उस नदीको पार करके इधर आये, उसी दिन उनका सम्बन्ध उन लोगोंसे छूट गया जिन्हें छोड़ कर वे इधर आये और एक नवीन राष्ट्रके संस्थापक हुए—एक नवीन आशा, नवीन उद्देश्यको धारण कर वे एतद्देशप्रसूत जातियोंको मिलाते और वंश-विस्तार करते हुए एक जाति और एक राष्ट्र हो गये। जिस जाति और राष्ट्रको सिन्धु या हिन्दू कहनेमें जो औचित्य और प्रेम है, वह और किसी नाममें नहीं है।

सिन्धु-नदीको ही अपनी सीमा करना कोई नवीन बात भी

नहीं थी, "फिरसे वेदोंकी स्थापना" की जो पुकार राष्ट्रमें मची हुई थी उसीका यह स्वाभाविक परिणाम था। वैदिक धर्मके अधिष्ठानमें जिस वैदिक राज्यको स्थापना हो, उसका नाम भी तो वैदिक ही होना चाहिये और क्या यह भी आवश्यक नहीं है कि नामकरणका प्रकार भी वैदिक ही हो? ऐसा ही हुआ। पुराणोंमें लेख है कि विक्रमादित्यके पौत्र शालिवाहनने विदेशियोंका इस देशमें दूसरी बार घुस आनेका प्रयत्न विफल किया और उन्हें सिन्धु नदीके पार मार भगाकर यह राजाज्ञा घोषित की कि आजसे आर्य और अनार्य राष्ट्रोंके बीच सिन्धु-नदी सीमा मानी जायगी—

"एतस्मिन्नंतरे तत्र शालिवाहन भूपतिः।
विक्रमादित्यपौत्रश्च पितृराज्यं प्रपेदिरे ॥
जित्वा शकान् दुराधर्षान् चीनतैत्तिरिदेशजान्।
वाल्हिकान् कामरूपांश्च रोमजान् खुरजान् शठान् ॥
तेषां कोषान् गृहीत्वाच दण्डयोग्यानकारयत्।
स्थापिता तेन मर्यादा म्लेच्छार्याणां पृथक् पृथक् ॥
सिन्धुस्थानमितिज्ञेयं राष्ट्रमार्यस्य चोत्तमम्।
म्लेच्छस्थानं परं सिन्धोः कृतं तेन महात्मना ॥

(भविष्यपुराण प्रतिसर्ग पर्व)

हमारे देशका प्राचीनसे प्राचीन नाम जो ग्रन्थोंमें मिलता है, वह "सप्तसिन्धु" या "सिन्धु" है। "भारतवर्ष" भी पीछेका नाम है और यह वैयक्तिक है। व्यक्तिविशेषका गौरव चाहे वह

कितना ही महान् हो, समय बीतनेके साथ क्षीण हो ही जाता है। जिस नाममें वैयक्तिक गौरव और पराक्रम ही भरा हुआ है, वह नाम राष्ट्रकी कृतज्ञता-बुद्धि और आत्मगौरव जब बढ़ने लगता है, तब उस राष्ट्रके चित्तका वैसा समाधान नहीं कर सकता, जैसा कि कोई ऐसा नाम करे जिसमें राष्ट्रीय पराक्रम भरा हो, जिसमें राष्ट्रके पूर्व पुरुषोंकी स्मृति संरक्षित हो और इसके साथ जो कोई उत्तम और स्थायी प्राकृतिक पावन दृश्य नेत्रोंके सामने उपस्थित करता हो। महाराज भरत आये और चले गये। ऐसे और भी कितने ही महान् राजा हो गये!—पर सिन्धु अभीतक वर्तमान है और सदा ऐसी ही वर्तमान रहेगी, हमारी कृतज्ञता-बुद्धिको सदा इसी प्रकार जगाती और बढ़ाती रहेगी, हमारे आत्मसम्मानकी इसी प्रकार वृद्धि करती रहेगी, हमारे पूर्वजोंकी स्मृतिका संचार करती रहेगी—हमारी भवितव्यतापर उसका पहरा रहेगा। यही हमारे राष्ट्रके कालशरीरका वह मेरुदण्ड है, जो अति प्राचीनके साथ सुदूर भविष्यका सम्बन्ध रखता है। जो नाम हमारे राष्ट्रको एक नदीके साथ सम्बद्ध करता और उसके साथ मिला देता है, वह प्रकृतिको हमारी तरफ ला देता है और हमारे राष्ट्रीय जीवनको एक ऐसे आधारपर स्थापित करता है, जो आधार (जहांतक मानवी दृष्टिकी पहुँच है) चिरस्थायी है। ये सब बातें हमारे पूर्वजोंके ध्यानमें आयी होंगी और इन्हींसे प्रेरित होकर उन्होंने हमारे राष्ट्र और देशका नाम "सिन्धुस्थान" रखा होगा।

"सिन्धुस्थान" वैदिक नाम तो है ही, पर इससे एक और विचित्र लाभ हुआ है। अवश्य ही यह संयोग मात्र है, पर उसकी उपेक्षा नहीं कर सकते। संस्कृत भाषामें "सिन्धु" केवल सिन्धु नदीका ही नाम नहीं है, समुद्रका भी है जो दक्षिण द्वीपकलाकी मेखला—समुद्ररशना—है। इस तरह इस अकेले "सिन्धु" शब्दके उच्चार-मात्रसे हमारे देशकी चतुःसीमा निर्दिष्ट हो जाती है। यदि हम इस दन्तकथाको न भी मानें कि पूर्ववाहिनी ब्रह्मपुत्रा इसी सिन्धुकी शाखा है और इस प्रकार सिन्धु ही हिमाचलके पश्चिम और पूर्व दोनों उतारोंपर प्रवाहित होती है और इसलिये हमारी पश्चिम सीमाकी तरह पूर्व सीमा भी सिन्धु ही है—यदि इस बातको हम न भी मानें—तोभी इसमें कोई संदेह नहीं कि उत्तर और पश्चिम ओरसे इसी नदीने इस देशको घेरा है और इसलिये सिन्धुस्थान कहनेसे, सिन्धु-नदीसे सिन्धु (समुद्र) पर्यन्त हमारी मातृ-भूमिकी सम्पूर्ण प्रतिमा हमारे नेत्रोंके सामने आ जाती है।

पर कोई यह न समझे कि "सिन्धु" नाम केवल भौगोलिक सुबीता देखकर ही ग्रहण किया गया। इस शब्दसे जो भावना उत्पन्न होती थी, वह केवल भौगोलिक नहीं बल्कि राष्ट्रीय थी। सिन्धुस्थान केवल एक भूखण्डका ही नाम नहीं था बल्कि एक राष्ट्र था। सिन्धुस्थानमें जिस संस्कृतिका प्रचार था, वह "सिन्धु" थी और सिन्धुस्थानके अधिवासी भी वैदिक कालसे ही "सिन्धु" थे। सिन्धुस्थान "राष्ट्रमार्यस्य चोत्तमम्" था और इसके परे विदेशियों-

का म्लेच्छस्थान था। सिन्धुस्थानकी यह परिभाषा किसी पौराणिक लेखके शब्दोंके बालकी खाल खींचकर या धार्मिक उन्मादसे नहीं की गयी है। भविष्यपुराणान्तर्गत उक्त श्लोकोंमें "आर्य" शब्दका अर्थ ही उन सब लोगोंसे है जो सिन्धुके इस पार एक राष्ट्र और एक जातिके अखण्ड अङ्ग हो गये थे—वैदिक-अवैदिक, ब्राह्मण-चांडाल, सबका उसमें समावेश था और सबकी एक संस्कृति थी, सबको एक जाति थी, एक देश था, एक राजनीति थी; "म्लेच्छ" शब्द "सिन्धुस्थान" के मुकाबले विदेशियोंका बोधक है जिनका राष्ट्र और जाति भिन्न है—धर्म चाहे एक हो या भिन्न हो।

यह राजाज्ञा, सिन्धुस्थानकी अन्य राजाज्ञाओंके समान, सब लोगोंके ही विचार और उद्योगका फल था। यदि ऐसा न हो तो अटक स्थानको लोग जो परंपरासे अपने देशका सीमान्त या "अटक" मानते आये इसका कारण क्या है? कारण यही है कि ऐसी ही राष्ट्रीय भावना थी कि यह सिन्धुओंके देशकी सीमा और विदेशियोंकी गतिकी अटक है। सब लोग—राजा-रंक—जो अबतक यही मानते चले आये हैं इसीसे यह मालूम होता है कि इस तरहकी कोई राजाज्ञा निकली होगी और उसमें हमारे देशकी सीमा "सिन्धु" और हमारे देश और राष्ट्रका नाम सिन्धुस्थान घोषित किया गया होगा। और इस राजाज्ञा तथा सर्वजनेच्छाका सबसे श्रेष्ठ धार्मिक संस्कार भी कराया गया होगा जिससे हमारे देशका प्राचीन वैदिक नाम

फिरसे स्थापित करनेका प्रयत्न पूर्ण सफल हुआ। अवश्य ही इन सिन्धु और सिन्धुस्थान नामका हमारे देश और राष्ट्रपर ऐसा प्रभाव कि हमारे राष्ट्रका संपूर्ण विचार उस नामसे रंग जाय और राष्ट्र उसे अपनी चिररक्षित संपत्ति समझे—पूर्ण रूपसे स्थापित होनेमें कई शताब्दियां लगी होंगी। और आज हम यह देखते हैं कि "आर्य्यावर्त" और "भारतवर्ष" इन नामोंका अर्थ बहुतोंको नहीं मालूम है, पर प्रत्येक मनुष्य—अदनासे अदना मनुष्य यह जानता है कि हिन्दू हमारा नाम है और हिन्दुस्थान हमारा देश है।*

* भविष्य पुराणसे जो श्लोक ऊपर दिये गये हैं वे पूर्ण विश्वसनीय प्रतीत होते हैं; कारण एक तो उनमें परंपरासे सुनी हुई बातका ही उल्लेख किया गया है; दूसरे हमारे इतिहासकी सामान्य गतिसे भी यही अनुमान होता है कि उन श्लोकोंमें वर्णित घटनाएँ अवश्य हुई होंगी; तीसरे हमें जो बात यहां दिखलानी है उसके लिये यह कोई बात नहीं है कि उल्लिखित राजाज्ञाकी तिथि अथवा वह राजाज्ञा निकालनेवाले राजाका नाम न मालूम हो तो काम न चले; और चौथे, ग्रन्थकार जिस बातका वर्णन कर रहा है वह अटकल-पच्चू नहीं बता रहा है, उसके विषयमें उसका निश्चय है। विक्रमादित्यकी जो वंशावली उसने ग्रन्थके अन्य भागमें दी है वह यहां दी हुई वंशावलीसे पूरे तौरपर मिलती है। जो ग्रन्थकार यह वंशावली जानता है वह उस वंशके प्रमुख राजाओंके चरित्रोंकी मुख्य बातें भी अवश्य जानता होगा।

और फिर हमारे इतिहासके मुख्य साधन भी तो ये ही परंपरासे सुनी हुई बातें हैं जो हमारे पुराणोंमें, रामायण और महाभारतमें तथा अन्य प्राचीन ग्रन्थोंमें ग्रथित हैं। इन बातोंके ब्यौरेपर भले ही कोई संदेह करे, उसकी तिथियां निश्चित करे या गलत बता दे पर ब्यौरेकी इन त्रुटियोंसे अथवा आलंकारिक वर्णनोंसे घबराकर हम इन ग्रन्थोंमें वर्णित बातोंको निर्माल्यवत्

अब इस "हिन्दू" नामके इतिहासकी और बातें लिखनेके पूर्व हम अपने ही चित्तके समाधानके लिये कुछ निवेदन करना चाहते हैं। इस परिच्छेदको लिखते हुए हमने अपने ही हृदयको चोट पहुंचाई है। इसलिये हम यह बतलाना चाहते हैं कि भारतवर्षने बौद्धमतका किस राजनीतिक संकटको दूर करनेके लिये परित्याग किया। उसका विवेचन करते हुए हमने कुछ कठोर शब्दोंका प्रयोग किया है पर उनसे कोई यह न समझे कि बौद्ध नामके विषयमें हमारे हृदयमें बहुत आदर नहीं है। नहीं, नहीं, उस महान् और पवित्र संघके हम भी वैसे ही श्रद्धालु और उपासक हैं जैसे कोई बौद्धमतानुयायी हो। संसारमें सबसे पवित्र संघ बौद्धसंघ है। हमने इस संघकी दीक्षा नहीं ली, इसलिये नहीं कि संघको हम अपने सम्मिलित होने योग्य न समझते हों; बल्कि इसलिये कि उस दिव्य मन्दिरकी सीढियोंपर पैर रखनेके हम योग्य

परित्याग नहीं कर सकते; क्योंकि मानव-जातिके प्राचीन कार्यकलापके ये ही तो वर्णन हैं। विशेष करके उन बातोंको छोड़ देनेका तो कोई कारण नहीं है जो असंभव या अस्वाभाविक कोटिकी नहीं हैं और जो ऐसी घटनाएँ है जो अन्य प्रकारसे भी प्रमाणित होती हैं। पुराणोंमें जो कुछ लिखा है वह सब मिथ्या है जबतक उसकी सत्यता किसी विदेशी प्रमाणसे सिद्ध न हो, यह जो कुछ लोगोंका ख्याल हो गया है वह बिलकुल वाहियात है। ठीक रास्ता तो यह है कि इन पुराण ग्रन्थोंमें जो घटनाएँ वर्णित हैं उन्हें हम सत्य मानें, वे सत्य ही हैं जबतक उनके विरुद्ध कोई ऐसा प्रमाण नहीं मिलता जो पूर्ण विश्वसनीय हो। केवल किसीके तर्कके भरोसेपर पुराणोंकी बातें झूठ कह देना कोई युक्तिसंगत बात नहीं है। भविष्य पुराणका ही उदाहरण लीजिये, क्योंकि इसमें कुछ त्रुटियां और असम्भवसी बातें हैं। और क्या

नहीं हैं। चट्टानोंपर उठे हुए राजमहलोंकी अपेक्षा बुद्धिगत सिद्धान्तोंपर उठा हुआ यह मन्दिर अधिक दीर्घजीवी है। मनुष्यके अंदर जो स्वाभाविक पाशविक वृत्ति है उससे मनुष्यको स्वतंत्र करनेका महान् और बहुत कुछ सफल उद्योग उन अर्हतों और भिक्षुओंने ही सर्वप्रथम किया जो भारतवर्षमें उत्पन्न हुए, जो भारतवर्षमें ही पले और जो भारतवर्षको ही अपनी धर्मभूमि समझते थे। इस बातका ख्याल हमें है और इससे हमारे हृदयमें जो भाव उठते हैं उन्हें हम शब्दों द्वारा नहीं व्यक्त कर सकते। जब संघके बारेमें हमारे हृदयमें ये भाव हैं तब उस संघके संस्थापक भगवान बुद्धदेवके संबन्धमें हम कह ही क्या सकते हैं? हम क्षुद्रसे क्षुद्र मनुष्य हैं। तथागत! हम अज्ञ हैं, हम कुछ भी

प्लटार्क ऐसी बातोंसे खाली है? भविष्यपुराणमें सिकंदरशाहके जन्मकी कथाका अस्वाभाविक वर्णन है। इसलिये क्या यह मानना होगा कि सिकंदरशाह कोई आदमी ही नहीं हुआ? या ये बातें बिलकुल मिथ्या है कि चन्द्रगुप्तने सेल्युकसकी कन्यासे विवाह किया जैसा कि भविष्यपुराणके इस श्लोकमें वर्णित है?—

> चन्द्रगुप्तस्तस्य सुतः पौरस्त्याधिपतेः सुताम्।
> सुलवस्य तथोद्वाह्य यावनीं बाद्धतत्पर: (?)॥

सच बात तो यह है कि इन पुराण ग्रन्थोंका हमारे ऊपर बड़ा भारी ऋण है जो इन्होंने हमारी जातिके पराक्रमोंकी बातें ऐसे ऐसे विप्लवोंसे सुरक्षित रखी हैं जिन विप्लवोंने अन्य देशोंमें तो समूचे राष्ट्रों और उनकी सभ्यताके नामतकको मिटा दिया है। हम तो यह कहते हैं कि पाश्चात्य विद्वानोंके जिन आधुनिक "पुराणों" ने यह आविष्कार किया है कि रामायण ग्रन्थ तो विजयनगर राज्यकी स्थापनाका ही गीत है अथवा गौतमबुद्धका वर्णन तो सूर्योदयका ही रूपक है उनकी अपेक्षा हमारे ये प्राचीन पुराण और इतिहास अधिक सच्चे, अधिक दुरुस्त और अधिक विश्वसनीय हैं।

नहीं जानते। यही भाव है जिससे हम आपकी पूजा करते हैं। आपके शब्दोंका अभिप्राय हृदयंगम करनेमें हम असमर्थ हैं, पर हम यह जानते हैं कि आप जो कहते हैं वही सत्य है; कारण आपके शब्द ईश्वरके मुखसे निकले हुए हैं, और हमारे शब्द इस जड़ जगतके कोलाहलके हैं। शायद आपने इस धरातलपर अवतीर्ण होकर अपना झंडा फहरानेमें बहुत जल्दी की; क्योंकि संसार अभी बच्चा है! आपकी बातको वह नहीं समझता और आपके प्रकाशसे उसकी आंखें चकाचौंध हो जाती हैं—वह आपके उपदेशको पूर्णरूपमें अपनी दृष्टिके सामने नहीं रख सकता। जब-तक संसारमें प्राणियोंके परस्पर व्यवहारका यही नियम चलता है कि—

चलानामचला भक्ष्या दंष्ट्रिणामप्यदंष्ट्रिणः।
अहस्तानां सहस्ताश्च शूराणां चैव भीरवः॥ (मनु)

और यह इतना प्रत्यक्ष है कि आकाशमें चमकनेवाले नक्षत्रोंके समान साधुताके मनोहर उपदेशोंके सुन्दर दृश्योंसे उसका अस्तित्व कोई अस्वीकार नहीं कर सकता, तबतक राष्ट्रीयताका झंडा विश्वबन्धुत्वकी वेदीपर बलि नहीं दिया जा सकता। देवीदेवताओंने भी इस झंडेकी पूजा की है। शाक्यसिंह भी इस झंडेके नीचे न लाये जाते तो इसके गौरवमें उतनी ही हीनता रह जाती। परन्तु हे तथागत! आप हमारे हैं जैसे श्रीरामचन्द्र या श्रीकृष्णचन्द्र अथवा श्रीमहावीर हमारे हैं; और आपके शब्द हमारी ही राष्ट्रीय आत्माकी भावनाओंकी प्रतिध्वनि हैं, आपके दिव्यलोकदर्शन

हमारे ही स्वप्न हैं और यदि इस मृत्युलोकमें कभी साधुताका ही नियम चला तो हे तथागत! आप देखेंगे कि जिस भूमिके पालनेमें आप पले, जिस जातिने आपको दूध पिलाया वही उस नियमको सिद्ध करनेमें सबके आगे रहेगी। यह बात इसके पू भी सिद्ध हो चुकी है।

(४)

"हिन्द्वानेकी ढाल"

यहांतक हमने संस्कृत ग्रन्थोंके आधारपर सिन्धु शब्दकी उत्पत्तिका पता चलाया और इस बाततक पहुँचे कि भारती राष्ट्रकी कल्पना ज्यों-ज्यों व्यापक हुई त्यों-त्यों अन्य सब शब्दों की अपेक्षा सिन्धुस्थान शब्द उस कल्पनाका अधिक द्योत हुआ। आर्यावर्त आदि शब्दोंके समान यह शब्द संप्रदाय विशे की ही संज्ञा नहीं है; उदाहरणार्थ, एक ग्रन्थकारने आर्यावर्त परिभाषा यों दी है—

> चातुर्वर्ण्यव्यवस्थानं यस्मिन्देशे न विद्यते।
> तं म्लेच्छदेशं जानीयादार्यावर्तस्ततः परम्॥

यह परिभाषा है तो ठीक, पर यह स्थायी होनेवाली नहीं है कोई संस्था या संप्रदाय समाजके लिये होता है न कि समा उस ंस्था या संप्रदायके लिये। "चातुर्वर्ण्यव्यवस्थानं" रह सकता है अथवा अपना काम पूरा करके नष्ट भी हो सकता पर उससे हमारा देश "म्लेच्छदेश"—विदेशियोंका देश—नहीं जायगा। संन्यासी, आर्यसमाजी, सिख तथा और भी कई संप्रदा

चातुर्वर्ण्यव्यवस्था नहीं मानते पर इससे क्या वे म्लेच्छ या विदेशी हो गये ? ईश्वर न करे ऐसा हो ! उनका और हमारा रक्त एक है, जाति एक है, देश एक है, और ईश्वर तो एक है ही। इसकी अपेक्षा अच्छी परिभाषा तो यही है कि

"तं वर्षं भारतं नाम भारती यत्र संततिः ॥"

हम हिन्दू सब एक हैं, एक ही जाति हैं, क्योंकि सबका रक्त एक है--सब भारती संतति हैं।

इस समयके इतिहासमें, बौद्धमतके उत्थान और पतनके साथ साथ भारतमें प्राकृत भाषाओंका बड़ी तेजीके साथ प्रचार और विस्तार हो रहा था और संस्कृत केवल पण्डितोंकी भाषा हो रही थी, यहांतक कि नवीन कल्पनाओं और नवीन नामोंका संस्कृतीकरण करना पड़ता था और तब किसी प्रामाणिक ग्रन्थमें उन्हें स्थान मिलता था। इससे समाजका नित्यनैमित्तिक जीवन प्रचलित प्राकृतों द्वारा ही प्रकट होता था। फलतः सिन्धु और सिन्धुस्थान शब्द कहीं कहीं संस्कृत ग्रन्थोंमें मिलते हैं सही, पर संस्कृत लेखक भारत शब्दको ही परंपरागत या अधिक प्रौढ़ मानते थे और उसीका प्रयोग करते थे। इसी प्रकार प्राकृतोंमें देखिये तो 'भारत' या 'आर्यावर्त' इन प्राचीन और प्रिय नामोंके स्थानमें सर्वत्र हिंदुस्थान (सिन्धुस्थान), इस प्रचलित और जीवित नामका प्रयोग किया गया है। यहां यह पिष्टपेषण करनेकी आवश्यकता नहीं कि संस्कृतका 'स' प्रायः प्राकृतमें 'ह' हो जाता है। इससे हम देखते हैं, भारतके वर्तमान प्राकृत साहित्यमें सर्वत्र हिन्दुस्थान या

हिन्दुओंका वर्णन है। संस्कृत भाषा हमारी जातिकी परम पवित्र सम्पत्ति है और वह सदा वैसी ही रहेगी, उससे हमारी जाति मूलतः एक है यह बात सामने रहेगी, उससे जीवनकी समृद्धिके साधन प्राप्त होते रहेंगे, उससे हमारे आदर्श उच्च होंगे, हमारा जीवन पवित्र रहेगा—यह सब होगा; परन्तु हमारी जातिकी प्रच-लित जीवित भाषा होनेका सम्मान उस प्राकृतको ही प्राप्त हुआ है जो संस्कृतकी सबसे बड़ी बेटी है और वह हिन्दी या हिन्दुस्थानी ही कहलाती भी है। प्राचीन सिन्धुओं या हिन्दुओंके वर्तमान वंशजोंकी राष्ट्रीय और सांस्कृतिक भाषा यही है। हिन्दु-स्थानी ही हिन्दुस्थानकी भाषा है। हिन्दीको राष्ट्रभाषाके उच्चपद-पर बैठानेका प्रयत्न नवीन भी नहीं है और कृत्रिम भी नहीं है। हिन्दुस्थानमें ब्रिटिश राज्य स्थापित होनेके कई शताब्दियां पूर्व अपने इतिहास ग्रन्थोंमें हम यह लिखा हुआ पाते हैं कि भारतवर्षभरमें यही माध्यम भाषा थी। कोई साधु या सौदागर रामेश्वरसे चल-कर हरद्वारतक जाते हुए इसी भाषाके द्वारा अपनी बात दूसरोंको समझाता और दूसरोंकी बात स्वयं समझता था। संस्कृत भाषा-के द्वारा कोई भी पण्डितोंकी सभा और राजाओंके दरबारमें पहुंच सकता था, परन्तु बाजारसे लेकर राजसभातक सर्वत्र अनायास पहुंचनेके लिये हिन्दी भाषा ही आम परवाना थी। नानक, चैतन्य, रामदास देशभरमें वैसी ही स्वच्छन्दताके साथ भ्रमण करते थे जैसे वे अपने अपने प्रदेशमें करते और सबको इसी भाषाके द्वारा अपने उपदेश सुनाते थे। हमारी इस वास्त-

त्रिक राष्ट्रभाषाकी उत्पत्ति और वृद्धि उसी समयसे हुई है जिस समयसे सिन्धुस्थान या हिन्दुस्थान और सिन्धु या हिन्दू इन प्राचीन नामोंका पुनः स्थापन और प्रचार हुआ है और इसलिये स्वभावतः ही जो भाषा संपूर्ण राष्ट्रकी अपनी भाषा थी वह हिन्दुस्थानी या हिन्दी कहलायी।

हूणों और शकोंको मार भगानेके पश्चात् सिन्धुस्थानके क्षात्र-बलकी बदौलत कई शताब्दियोंतक यहां शान्ति विराजती रही और एक बार फिर हिन्दुस्थानने सुख और समृद्धिका बड़ा जमाना देखा। स्वाधीनताका सुख राजा और रङ्क सभीको समा-नरूपसे प्राप्त हुआ। देशभक्त ग्रन्थकारोंने हमारे इतिहासके इस बड़े भारी अध्यायमें सहस्राधिक वर्षव्यापी तत्कालीन गौरव और सुखा-नुभवका देशाभिमानसे मस्त होकर इस प्रकार वर्णन किया है—

ग्रामे ग्रामे स्थितो देवः देशे देशे स्थितो मखः।
गेहे गेहे स्थितं द्रव्यं धर्मश्चैव जने जने ॥

(भविष्यपुराण प्रतिसर्ग पर्व)

सिंहलद्वीपसे काश्मीरपर्यन्त एक ही राजवंशके राजपूतोंका राज्य था और सब राजा परस्परमें विवाह-बन्धनसे बंधे थे; इससे भी अधिक सबकी संस्कृति, धर्म और पूर्व-परंपरा एक थी, समस्त राष्ट्रका जीवन एकरस था। वह जितना समृद्ध था उत-नाही पवित्र था। और सबकी एक राष्ट्रभाषा थी। राष्ट्रभाषाकी यह एकता हमारे राष्ट्रीय जीवनकी आन्तरिक एकताका ही बाह्य रूप था।

परन्तु इतिहासमें यह प्रायः देखा जाता है कि अकंटक सुख और समृद्धिसे गफलत आ जाती है और राष्ट्रको स्वप्न देखते हुए पड़े रहनेका अभ्याससा हो जाता है। सिन्धुस्थानकी यही गति हुई। सिन्धुराष्ट्र स्वप्न देखता रहा। अन्तको महम्मद गजनवी सिन्धुस्थानकी सीमा-रेखा सिन्धु नदी पार करके सिन्धुस्थानपर चढ़ आया। तब आंखें मलता हुआ हिन्दुस्थान जागा। जीवन-मरणका संग्राम उस दिन आरम्भ हुआ। आत्म-चैतन्य अनात्मके साथ युद्ध करनेसे ही बहुत अच्छी तरहसे प्रकट होता है। समस्त राष्ट्रको एक करनेकी शक्ति जितनी समान शत्रुके आक्रमणके दृश्यमें है उतनी और किसीमें नहीं। द्वेष परस्परको बिलगाता और एक भी करता है। हिन्दुस्थानके अखंड, अभेद्य और एक होनेका वह उत्तम अवसर था जब वह दुर्दिन उपस्थित हुआ कि उस मूर्ति-भंजक म्लेच्छने सिन्धुको पार किया। कासिमकी मुसलमान सेनाने भी सिन्धुको पार किया था, पर उसकी चोट गहरी नहीं थी, उससे हृदयमें घाव नहीं हुआ, हृदयपर उसने वार भी नहीं किया। सच्चा संग्राम तो महम्मद गजनवीके साथ ही आरम्भ हुआ—(और समाप्त कब हुआ ?—अब्दालीके साथ ?) वर्षानुवर्ष बीत चले, शताब्दियां उलट गयीं और संग्राम जारी रहा। अरब-स्थान जो कुछ था वह नहीं रहा, ईरान नष्ट हो गया; मिश्र, शाम, अफगानिस्तान, बलूचिस्तान, तारतरी—ग्रनाडासे गजनी तक—सब राष्ट्र अपनी संस्कृतिके साथ इस्लामके खड्गके सामने ढेर हो गये। परन्तु हिन्दुस्थानमें उस खड्गने वार तो किया पर वह उसे मार न सका। प्रत्येक वारके साथ उस खड्गकी

धार कुन्द होती गयी। प्रत्येक चोट पहलेसे अधिक गहरी हुई, पर फिरसे वार करनेके लिये खड्ग उस ज़ख्मसे निकालकर ज्योंही ऊपर उठाया जाता त्योंही घाव भर जाता। वार करनेवालेकी जीवनी शक्तिसे वार सहनेवालेकी जीवनी शक्ति अधिक प्रमाणित हुई। संग्राम बराबरीवालोंमें नहीं था। किसी एक जाति या राष्ट्रके साथ हिन्दुस्थानको नहीं लड़ना पड़ रहा था। प्रायः समस्त एशिया आक्रमणकारी सेनाके पीछे खड़ा था और उसके पीछे लगभग सारा यूरोप था। अरबोंने सिन्धमें प्रवेश किया। अकेले वे इससे अधिक और कर ही क्या सकते थे! कुछ कालके बाद वे अपने ही देशकी स्वाधीनताकी रक्षा नहीं कर सके और इसके बाद अरब जातिका नाम भी नहीं सुना गया। परन्तु यहां अकेले हिन्दुस्थानको अरबों, ईरानियों, पठानों, बलूचियों, तातरों, तुर्कों और मुगलोंका सामना करना पड़ा—सहारेके रेगिस्तानने मानों मानवी सेनाका रूप धारण किया था और उसमें अकेले फंसे हुए हिन्दुस्थानपर सारी दुनियाका तूफान उठा था! "धर्म" में गति देनेकी बड़ी भारी शक्ति है। लूटमारमें भी ऐसी ही शक्ति है। परन्तु जहां धर्मपर लूटमारका अंकुश रहता है और धर्मके नामपर लूटमार होती है वहां इन दोनोंके संयोगकी शक्ति बड़ी ही भयानक होती है और उसका परिणाम भी वैसा ही भयानक होता है—जहांतहां हाहाकार मच जाता है। स्वर्ग और नरक दोनों एक हो गये थे और बड़ा ही भयानक रूप धारण कर महम्मदने सिन्धुको पार कर हिंदुस्थानपर

अकस्मात् आक्रमण किया। उस दिनसे जो संग्राम आरम्भ हुआ वह कई शताब्दियोंतक जारी रहा और हिन्दुस्थान अकेला लड़ता रहा—युद्ध नैतिक क्षेत्रमें भी था और रणक्षेत्रमें भी। नैतिक क्षेत्रमें जो संपत्ति मुसलमानोंकी छिन गयी उसे लौटा लानेके लिये औरंगजेबने पागलपनका उद्योग आरम्भ किया। उससे रणक्षेत्रमें भी उनकी हार होनेका दिन और भी निकट आ गया। अन्तको भाऊसाहेबने मुगलोंकी राजधानीका छत्र भङ्गकर उसके टुकड़े टुकड़े कर डाले, पानीपतका दिन उदय हुआ, हिन्दू उस खास लड़ाईमें हारे, पर दीर्घ कालसे चले आये हुए संग्राममें जीते। फिर किसी पठानने दिल्लीपर आक्रमण करनेकी हिम्मत नहीं की। हिन्दुओंकी जो विजय वैजयंती मराठोंने अटकमें फहरायी उसे हमारे सिख और आगे बढ़कर सिन्धु पार करके काबुलके तटपर फहरा आये।

इस दीर्घकालीन संग्राममें हिन्दुओंको इस बातकी पूरी पहचान हुई कि हम हिन्दू हैं और यह हिन्दूराष्ट्र ऐसा अखंड बन गया कि इसके पूर्व ऐसी अखंडता नहीं देखनेमें आयी थी। यह स्मरण रहे कि हम समग्र हिन्दूजातिकी बात कह रहे हैं, किसी खास संप्रदाय या पंथकी नहीं। सनातनी, सतनामी, सिख, आर्य, अनार्य, मराठे, मद्रासी, ब्राह्मण और पंचम—सब हिन्दूके नाते हारे और हिन्दूके नाते जीते। क्या मित्र और क्या शत्रु—दोनों, और सब नामोंको दबाकर हिन्दू और हिन्दुस्थान—इन नामोंको बढ़ानेमें सहायक हुए। आर्य्यावर्त और दक्षिणापथ, जंबुद्वीप और भारतवर्ष—इन नामोंमें हिन्दुओंकी उस राजनीतिक और सांस्कृतिक

अखंडताकी भावनाको व्यक्त करनेका वैसा सामर्थ्य नहीं था जैसा कि "हिन्दुस्थान" नाममें। सिन्धुके इस पार रहनेवाले सब लोग जो सिन्धुनदीसे सिन्धु-समुद्रपर्यंत अपनी जन्मभूमि मानते थे, इस एक "हिन्दुस्थान" नाममें अपना अस्तित्व अनुभव करते थे। हमारे शत्रु हमें हिन्दू कहकर हमारा तिरस्कार करते थे और हिन्दुस्तान-की सब जातियां, सब संप्रदाय,सब पंथ,अटकसे कटकपर्यंत, एक शरीर,एक मन,एक राष्ट्र हो गये। इस मौकेपर हमसे यह कहे बिना नहीं रहा जाता कि अबतक सन् १३००से सन् १८०० तक काश्मीरसे लेकर सिंहलद्वीपतक और सिन्धसे बगालतक भिन्न भिन्न प्रदेशोंमें हिन्दुओंके जो उद्योग कभी एक साथ और कभी अलग अलग होते रहे उनका, सम्पूर्ण हिन्दूजातिके इतिहासकी दृष्टिसे अबतक किसी-ने विचार ही नहीं किया है। इस कालमें संपूर्ण राष्ट्रके सामने हिन्दुत्वकी रक्षा,हिन्दूजातिके मान और मर्यादाकी रक्षाका एकसा प्रश्न था और इसके लिये सैकड़ों रणक्षेत्र बन रहे थे और अन्य प्रयत्न भी हो रहे थे। यही एक शब्द था—"हिन्दुत्व" जो हमारे राष्ट्रके मनोमय शरीरके मेरुदंडका काम कर रहा था। इसी हिन्दुत्वके कारण काश्मीरके ब्राह्मणोंपर होनेवाले अत्याचारोंकी वेदना मद्रासके नायरोंसे नहीं सही जाती थी। हिन्दुओंकी हार देखकर हमारे भाट रोते थे, हमारे आचार्य हिन्दुओंको बढ़ावा देते थे, हमारे वीर हिन्दुओंकी लड़ाइयां लड़ते थे, हमारे साधु महात्मा हिन्दुओंको आशीर्वाद देते थे, हमारे राजनीतिज्ञ हिन्दुओंके भाग्यका विधान करते थे, हमारी माताएँ हिन्दुओं-

के घावोंपर विलाप करतीं और हिन्दुओंकी विजयपर गर्व करती थीं।

इस संबंधमें उस समयके ग्रन्थकारोंने जो कुछ लिख रखा है उसके यदि हम अवतरण दें तो एक बड़ा ग्रन्थ बन जायगा। यह काम तो बड़ा प्रिय है पर जो बात यहां सिद्ध करनी है उसके लिये इसकी आवश्यकता नहीं। इसलिये यहां उस कालके श्रेष्ठ पुरुषोंके मुखसे या लेखनीसे निकले हुए वर्णनोंके कुछ अवतरणों-से ही हमें संतोष करना चाहिये।

हिन्दी भाषामें जितने नये पुराने ग्रन्थ हैं उनमें चन्दबरदाई-कृत "पृथ्वीराज रासो" नामक महाकाव्य सबसे प्राचीन प्रामाणिक ग्रन्थ है। इसमें एक ही पद्य ऐसा है जो इस ग्रन्थकी रचनासे भी पहलेका है। परन्तु आश्चर्य और आनन्दका विषय यह है कि हमारे उत्तरापथके प्राकृत साहित्यकी इस सबसे प्राचीन कवितामें हिन्दुस्थानकी पूर्ण देशाभिमानयुक्त और गौरव-सूचक स्तुति है। चन्दबरदाईके पिता, वेन कवि, पृथ्वीराजके पिता अजमेर-महाराजको संबोधन कर कहते हैं—

अटल ठाट महिपाट, अटल तारागढ़ थानं।
अटल नग्र अजमेर, अटल हिन्दव अस्थानं॥
अटल तेज परताप, अटल लंका गढ़ डंडिय।
अटल आप चहुवान, अटल भूमि जस मंडिय॥
संभरी भूप सोमेसनृप, अटल छत्र ओपै सुसर।
कविराज वेन आसीस दे, अटल जगां रजेस कर॥

चन्दबरदाई हिन्दी-साहित्यके आदि कवि माने जाते हैं और इन्होंने हिन्दु, हिंदवान, हिन्द—इन शब्दोंका इतनी बार और इतनी स्वाभाविकताके साथ प्रयोग किया है कि इस विषयमें कोई सन्देह ही नहीं रह जाता कि ११ वीं शताब्दीमें ये शब्द सर्व-साधारणमें प्रचलित थे। यह वह समय है, जब पंजाबमें भी मुसलमानोंके पैर नहीं जमे थे और यह सम्भव नहीं है कि वे इस समयके स्वाधीन और स्वाभिमानी राजपूतोंसे कोई ऐसा नाम स्वीकार करा सकते, जो उनके प्रति घृणा सूचित करनेके लिये उनके शत्रुओंने रखा हो, और न यह संभव है कि ऐसा नाम ये राजपूत गौरव और अभिमानके साथ अपना लेते। शहाबुद्दीनको जिस समय हिन्दुओंने कैद किया और पृथ्वीराजने उससे यह शर्त करा कर कि फिर कभी "हिन्दुओंपर आक्रमण नहीं करेंगे", उसे छोड़ दिया, उस समयका वर्णन करते हुए चन्द कहते हैं—

"राखि पंच दिन साहि अदब आदर बहु किन्नौ।
सुज हुसैन गाजी सुपूत हत्थै ग्रहि दिन्नौ॥
किय सलाम तिन बार जाहु अपन्ने सुथानह।
मति हिन्दुपर साहि सज्जि आओ स्वस्थानह॥"

(पृ० रासो स० ६)

पर शहाबुद्दीन ऐसा आदमी नहीं था जो हिन्दुओंकी वीरोचित उदारताका कृतज्ञ होता। बार बार फौज जमा करके बार बार उसने अपने उपकारीके साथ जंग छेड़ा—

"जब हिन्दु दल जोर हुअ छुट्टि मीरधर भ्रम।

असमय अरबस्तान चला करन उदूसा क्रम ॥"

और फिर—

"जुरे हिन्दु मीरे, बहे खग्ग तारं ।
मुखे मार मारं बहे सूरसारं ॥"

अन्तको—

"हिन्दु म्लेच्छ अघाइ घाइन ।
नंचि नारद युद्ध चायन ॥"

पर हिन्दुओंको कुचलनेका इतना प्रयत्न करके भी शहाबुद्धीनसे कुछ न बन पड़ा और दिल्लीमें जब यह समाचार पहुँचा कि शहाबुद्दीन फिर कैद किया गया तब प्रजाके आनन्दका पारावार न रहा। प्रजाने पृथ्वीराजको प्रेम और आनन्दसे बधाई दी—

"आज भाग चहुआन घर ।
आज भाग हिन्दवान ॥
इन जीवित दिल्लीश्वर ।
गंज न सक्कै आन ॥"

शहाबुद्दीनने फिर प्रतिज्ञा की कि अब ऐसा नहीं करूँगा। पहली सब प्रतिज्ञाएं वह भंग कर चुका था। फिर इस प्रतिज्ञाने उसे रिहाई दिला दी। पर कृतघ्न शहाबुद्दीनने फिर हिन्दुस्थानपर आक्रमण किया। और ऐसी तैयारी और जोरके साथ आक्रमण किया कि बातकी बातमें दिल्लीके द्वारपर पहुँच गया। हिन्दपति पृथ्वीराजने युद्धसभा निमंत्रित की, शहाबुद्दीनने गुस्ताखीके साथ हिन्दपतिको ललकारा, सब रावल और सामन्तोंकी आंखोंसे

आगकी चिनगारियां निकलने लगीं, शहाबुद्दीनकी ललकार सुनानेके लिये जो यवनदूत दरबारमें आया था उससे चामुण्डरायने कहा कि, "शाहको याद दिलाओ कि हमारे ही सामने तुमने अपनी नाक रगड़ी थी, अब बेहया होकर चढ़ाई करने आये हो !" चामुण्डराय फिर बोले—

"निर्लज्ज म्लेच्छ लजै नहीं। हम हिन्दू लजवान ॥"

दुःखका दिन समीप आया। दोनों ओरके लोग जानते थे कि यह भाग्यका खेल है। न जाने कौन हारेगा और कौन जीतेगा। हम्मीरकी हारके कुछ ही पहले चन्द बरदाई भगवती दुर्गाकी स्तुति करते हैं—कैसी हृदयद्रावक और देशभक्तिपूर्ण स्तुति है--

"द्रुग्गे हिन्दुराजान बन्दी न आयं।
जपै जाप जालंधरं तूं सहायं ॥
नमस्ते नमस्ते इ जालंधरानी !
सुरं आसुरं नागपूजा प्रमानी ॥"

चन्दने फिर युद्धका जो कुछ परिणाम हुआ उसका वर्णन करके उस प्रसंगका वर्णन किया है जब कौशल रचकर पृथ्वीराजने शहाबुद्दीनका सिर धड़से उतार लिया। अन्तमें विजित हिन्दपति पृथ्वीराजकी इस प्रकार मर्मस्पर्शी शब्दोंमें स्तुति की--

"धनि हिन्दु पृथिराज, जिने रजवट्ट उजारिय।
धनि हिन्दु पृथिराज, बाले कलिमझ्झ उजारिय ॥
धनि हिन्दू पृथिराज, जेन सुविहान ह संध्यो।
बार बारह ग्रहि मुक्कि, अन्तकाल सर बन्ध्यो ॥"

यह ध्यानमें रखनेकी बात है कि रासोमें बार बार "भारत" शब्द आया है पर वह "महाभारत" के अर्थमें आया है। भारत-वर्षके अर्थमें शायद ही कहीं आया हो। यही बात इसके बादके साहित्यमें भी देखते हैं। हिन्दुओंका फिरसे उत्थान होने और हिन्दू-स्वातंत्र्यका युद्ध आरम्भ होनेके पूर्वतक संपूर्ण साहित्यमें "हिन्दु और हिन्दुस्थान" इन नामोंकी ही सर्वत्र महिमा गायी गयी है। हिन्दू-स्वातन्त्र्य-युद्धके महोपदेशक और आचार्य समर्थ रामदास स्वामी अपनी अलौकिक उक्तियोंमें एक स्थानपर उस दिव्य दृश्यका वर्णन करते हैं जिसे उन्होंने स्वप्नमें देखा था और जिसे वे विजयोत्साहके साथ कृतज्ञतापूर्वक कहते हैं कि, अधिकांशमें सिद्ध हो गया है—

* स्वप्नीं जें देखिलें रात्रीं, तें तें तैसेंचि होतसे।
हिंडतां फिरतां गेलों, आनन्दवनभूवनीं॥ १॥
बुडाले सर्व ही पापी, हिन्दुस्थान बलावलें।
अभक्तांचा क्षयो झाला, आनन्दवनभूवनीं॥२॥
कल्पांत मांडिला मोठा, म्लेच्छ दैत्य बुडावया।
कैपक्ष घेतला देवीं, आनन्दवनभूवनीं॥ ३॥

* "रातको स्वप्न देखा, ठीक वही सब हो रहा है। घूमते फिरते आनन्दवन भवनमें गये। देखा सब पापियोंका नाश हो गया है, हिन्दुस्थान सबसे बलवान हुआ है; अभक्तोंका क्षय हो गया है और पापियोंका नाश करनेके लिये, प्रलयकारी प्रचंड उद्योग हो रहा है, देवता हमारे साथ हैं। यहांसे राजधर्मके साथ साथ धर्मका अभ्युत्थान हो रहा है; सबको इससे बड़ा संतोष है। औरंग डूबा। शत्रुओंका संहार हुआ। भ्रष्ट छत्र फिरसे प्रतिष्ठित हुए। बोलनेमें दोष है, करके दिखाना चाहिये; आगे जो कुछ हो, वही सत्य है। स्नान-संध्या, जप-तप, अनुष्ठानके लिये अब जलकी कोई कमी नहीं है। जो कुछ स्मरण हुआ, वही लिखा। भगवान प्रत्यक्ष हैं। राम ही कर्त्ता और राम ही भोक्ता हैं।"

येथून वाढला धर्म, राजधर्मासमागमें ।
संतोष मांडिला मोठा, आनन्दवनभूवनीं ॥ ४ ॥
बुडाला औरंग्या पापी, म्लेच्छ संहार जाहला ।
मोडिली मांडिलीं छत्रें, आनन्दवनभूवनीं ॥ ५ ॥
बोलणे वाउगें होतें, चालणें पाहिजे बरें ।
पुढें घडेल तें खरें, आनन्दवनभूवनीं ॥६॥
स्मरलें लिहिलें आहे, बोलता चालता हरी ।
उदंड जाहलें पाणी, स्नान संध्या करावया ।
जप तप अनुष्ठानें, आनन्दवनभूवनीं ॥ ७ ॥
राम कर्ता राम भोक्ता, आनन्दवनभूवनीं ॥ ८ ॥

हमारे उन राष्ट्रीय चारणोंमें जो हिन्दू स्वाधीनताके युद्धके उस कालमें देशभरमें भ्रमण करके हिन्दुस्थानको "तस्मात् त्वमुत्तिष्ठ यशोलभस्व" का उपदेश दे रहे थे उनमें भूषण कवि बहुत प्रसिद्ध हैं। उन्होंने औरङ्गजेबको ललकारा था—

लाजधरौ शिवजीसे लरौ सब सैयद सेख पठान पठायके ।
भूषन ह्यां गढकोटन हारे उहां तुम क्यों मठ तोरे रिसायके ॥
हिन्दुनके पतिसों न बिसात सतावत हिन्दु गरीबन पायके ।
लीजै न कलंक दिल्लीके बालम आलम आलमगीर कहायके ॥

भूषण फिर दूसरे स्थानमें कहते हैं—

जगतमें जीते महावीर महाराजनते
महाराज बावनहू पातसाह लेवा ने ।
पातसाह बावनौ दिल्लीके पातसाह दिल्लीपति
पातसाहजीसो हिन्दुपति सेवाने ॥

दाढीके रखयनकी दाढीसी रहति छाति ।
बाढ़ी जस मर्याद हद्द हिन्दुवानेकी ।
कढि गयी रयतिके मनकी कसक
मिट गयी ठसक तमाम तुरकानेकी ॥
भूषन भनत दिल्लीपति दिल धकधका
सुनि सुनि धाक सिवराज मरदानेकी ।
मोटी भई चण्डी बिन चोटीके चबाय सीस
खोटी भई संपति चकताके घरानेकी ॥

शिवाजीके पराक्रमका वर्णन करते हुए भूषण कहते हैं—

राखी हिन्दुवानी, हिन्दुवानके तिलक राख्यो ।
स्मृति और पुराण राख्यो, वेद विधी सुनि मैं ।
राखी रजपूती राजधानी राखी राजनकी ।
धरामें धरम राख्यो राख्यो गुण गुणीमें ॥
भूषण सुकवि जीति हद्द मरहट्टनकी
देस देस कीरति बखानि तव सुनि मैं ।
साहिके सुपूत सिवराज समसेर तेरी,
दिल्ली दल दाबिके दिवाल राखी दुनिमैं ॥

इस दृष्टिसे शिवाजी महाराज और उनके साथियोंके पराक्रमोंकी समस्त हिन्दुस्थानमें स्तुति हो रही थी। भूषण मराठे नहीं थे, पर शिवाजीसे बाजीरावपर्यन्त समस्त मराठा विजेताओंकी विजययात्राका उन्हें उतना ही अभिमान था, जितना स्वयं मराठोंको। भूषण हिन्दुत्वके परम अभिमानी थे और अपने जीवनके

शेष क्षणतक वे अपने उद्दीपक गीतोंको सुनाकर तत्कालीन हिन्दू नेताओंमें हिन्दुत्वका अभिमान जगाते रहते थे। शिवाजीके बाद उनके दूसरे प्रिय नेता बुन्देलखण्डके वीर छत्रसाल महाराज थे।

भूषण कहते हैं—

हैबर हरट्ट साजि, गैबर गरट्ट सम-
पैदर थट्ट फौज तुरकानेकी।
भूषन भनत राय चंपतिको छत्रसाल
रोप्यो रनख्याल व्हैकै ढाल हिन्दवानेकी ॥

यह महाराज छत्रसालकी केवल व्याजस्तुति नहीं है। छत्रसाल वास्तवमें वैसे ही थे जैसे शिवाजी, राजसिंह, गुरुगोविन्द सिंह जो "ढाल हिंदवानेकी" थे। वे अपनेको "हिन्दुत्व" के रक्षक समझते थे। छत्रसाल कहते हैं—

हिंदू तुरक दीन द्वै गाये। तिनसों बैर सदा चलि आये ॥
लेख्यो सुर असुरनको जैसो। केहरि करिन बखानो तैसो ॥
जबतें शहा तखतपर बैठे। तब तैं हिंदुन सौं उर डाठे ॥
सहगे कर तीरथिन लगाये। वेद देवाले निदर ढहाये ॥
सब रजपूत सौर नित नावैं। ऐड करे नित पैदल धावैं ॥
ऐड एक सिवराज निबाही। करै आपके चित्तकि चाही ॥
आठ पातसाही झुक झोरै। सूबनि बांधि डांड लै छोरै ॥

बुन्देला वीर महाराज छत्रसाल छत्रपति श्रीशिवाजी महा-

राजसे मिले थे। तब शिवाजी महाराजने यह कहकर उन्हें बहुत ही उत्साहित किया था कि—

"तुम छत्री सिरताज। जीत आपनी भूमिकौ करौ देशको राज॥"

पीछे बुन्देलखंडके सुजानसिंह नामक एक शक्तिशाली क्षत्रिय राजा महाराज छत्रसालसे मिले। दोनोंकी जो बातचीत हुई, उसमें सुजानसिंहने देशकी तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितिका कैसा हृदय-विदारक वर्णन किया है—

"पातसाह लागे करन, हिन्दूधर्मकौ नासु।
सुधि कर चंपतरायकी, लई बुन्देला सासु॥
जब तै चंपति कस्यौ पयानौ, तबतै पस्यो हीन हिंदवानो॥
लग्यो होग तुरकजको जोरा, को राखे हिन्दुनको तोरा॥
अब जो तुम कटि कसौ कृपाती, तौ फिरि चढै हिंदु मुख पानी॥"

वृद्ध सुजानसिंहने यह कह कर अपना खड्ग और हृदय छत्रसालको अर्पण किया और उन्हें आशीर्वाद दिया—

यह कहि प्रीति हिये उमगाई। दिये पान किरवान बधाई॥
दोऊ हाथ माथपर राखे। पूरन करौ काज अभिलाषे॥
हिन्दुधरम जग जाई चलावौ। दौरि दिल्लीदल हलनि हलावौ॥
(छत्रप्रकाश)*

पंजाबमें गुरु तेगबहादुर सिंहने स्वाधीनताका पक्ष केवल ग्रहण ही नहीं किया बल्कि उसपर अपने प्राण उत्सर्ग कर दिये।

* छत्रप्रकाश ऐतिहासिक ग्रन्थ है। इसमें महाराज छत्रसालके राज्यका वर्णन है और इसे उन्हींकी आज्ञासे लाल कविने लिखा है।

उनके पास जब काश्मीरके ब्राह्मण आये और कहने लगे कि हमारे ऊपर असह्य अत्याचार हो रहा है और हमसे यह कहा जा रहा है कि "या तो इस्लाम कबूल करो या मौत", तब गुरु तेग-बहादुरने उन्हें यह सलाह दी—

तुम सुनो दिजेसु ढिग तुर्कसु अबैसु इम गावो।
इक पीर हमारा हिंदु भारा भाईचारा लख पावो॥
है तेगबहादुर जगत उजागर ता आगर तुर्क करो।
तिस पाछे तबही हम फिर सबही बन हैं तुरक भरो॥
(पंथप्रकाश)

"हे द्विजो! सुनो। तुम लोग तुर्कों (मुसलमानों) के पास जाओ और निर्भय होकर उनसे कहो, "हमारा एक बड़ा हिंदू पीर है, जिसके लाखों शिष्य हैं। उसका नाम तेगबहादुर है, वह जग-तमें प्रकाश फैलानेवाला है। पहले उससे इस्लाम कबूल करवाओ तब हमलोग भी इस्लाम कबूल करेंगे।"

और जब जाति और धर्मके शत्रुओंने उन्हें ललकारा तब—

तिनते सुन श्रीतेगबहादुर। धर्म निवाहण विषे बहादुर॥
उत्तर भन्यौ धर्म हम हिन्दु। अति प्रियको किमकरे निकंदु॥
(सूर्य प्रकाश)

"उनकी बात सुनकर धर्म निवाहनेमें बहादुर श्रीतेगबहादुरने यह जवाब दिया कि हमारा धर्म हिन्दू है,यह हमारा अति प्रिय है, इसका अपमान न होने देंगे।"

इन्हींके पुत्र जगवंदित गुरुगोविन्दसिंह, जो हमारी हिन्दूजाति-के कवि, धर्मोपदेशक और योद्धा थे, कहते हैं—

सकल जगतमें खालसा पंथ गाजे।
जगे धर्म हिंदू सकल भंड भाजे॥
(गुरु गोविन्दसिंहकृत विचित्र नाटक)

छत्रपति श्रीशिवाजी महाराजके बखरकार कहते हैं—

"शिवाजीचें मनांत आलें जे आपण हिंदू। सर्व दक्षिण देश यवनांनी पादाक्रांत केला। क्षेत्रास पीडा केली। हिंदु-धर्म बुडविला। प्राण ही देऊन धर्म रक्षूं। आपलें पराक्रमें नवीन दौलत संपादूं, तें अन्न भक्षूं।"

अर्थात् "शिवाजीने मन ही मन विचार किया कि हम हिन्दू हैं। सर्व दक्षिण देशको यवनोंने पादाक्रांत कर डाला है। तीर्थ-स्थानोंको क्लेश पहुंचाया है। हिंदू-धर्म डुबा दिया है। प्राण देकर धर्म-रक्षण करेंगे। अपने पराक्रमसे नवीन राज्य स्थापित करेंगे। वही अन्न भक्षण करेंगे।"

परंतु बुद्धिमान और विश्वासपात्र दादाजीने सलाह दी—"आप कहते हैं वह काम तो बहुत अच्छा है, पर इसका पार लगना बड़ा कठिन है। इसके लिये मजबूत गढ़ चाहिये। स्थान स्थानमें हिन्दू राजा और हिंदू फौजें सहायता करें तब यह हो। ईश्वर अनुकूल और सिद्ध पुरुषोंका आशीर्वाद हो तो ऐसी बातें हो सकती हैं।" (चिटनीस बखर)

शिवाजीके इस संपूर्ण उद्योगमें दादाजीका हाथ था—उन्हींका तत्त्वावधान था। युवक शिवाजी अपने एक सहयोगी नवयुवक देशभक्तको सन् १६६४ ई० में लिखते हैं—

"शहास तुम्ही आपली बेमानगिरी करीत नाहीं। आदि कुलदेव स्वयंभू। त्यांनीं आम्हांस यश दिले व पुढें तो मनोरथ **हिन्दवी स्वराज्य** करून पुरविणार आहे हें राज्य व्हावें हें श्रीचे मनांत फार आहे।"

अर्थात् "आप शाहसे बेईमानी नहीं करेंगे (अच्छी बात है)! हमारे आदि कुलदेव (तो) स्वयंभू हैं। उन्होंने हमें यश दिया है और आगे भी वे हमारा मनोरथ **हिन्दवी स्वराज्य** करके पूरा करनेवाले हैं। यह राज्य स्थापित हो ऐसी श्रीकी उत्कट इच्छा है।"

श्रीयुत राजवाडे महोदयके पास इस चिट्ठीकी असली नकल है, जिससे यह पता लगता है कि १७ वीं और १८ वीं शताब्दीमें हिन्दू-जातिने जो महदुद्योग किया, उसकी मूल भावना क्या थी। यह कोई क्षुद्र उद्योग नहीं था—कोई संकुचित भाव इसमें नहीं था - यह **हिन्दवी स्वराज्य**—हिन्दू-साम्राज्यकी स्थापनाका महान् उद्योग था। इसी प्रेरणासे शिवाजीके सब काम हुए जब वह केवल एक बालक थे। इसका प्रमाण हमें उन्हींके शब्दोंमें मिलता है।

परंतु जब राणा जयसिंह दिल्लीपतिकी ओरसे शिवाजीका दमन करनेके लिये आये, तब स्वभावतः ही उनका सामना करने-वाले खड्गकी धार कुंद हो गयी। जो राजपूत हिंदुत्वकी रक्षा करने-वाली हिंदुओंकी ढाल थे, उन्हीं राजपूतोंको अपना और अपने सहधर्मी और हिन्दू-भाइयोंका रक्त गिरानेपर उद्यत देखकर और

सो भी इसलिये कि जिसमें मुसलमानोंकी विजय हो, चित्त अत्यन्त उद्विग्न हो उठा—वीरोंका उत्साह भंग होने लगा! शिवाजी जयसिंहसे कहते हैं—"आप जो किले चाहते हों, मैं देनेके लिये तैयार हूं। उनपर आपका झण्डा चढ़ाता हूं। पर मुसलमानोंको यश मत दो। मैं हिन्दू हूं। आप राजपूत हैं; इसलिये आप भी हिन्दू ही हैं। असलमें राज हिन्दुओंका ही है। हिन्दू धर्मरक्षकके सामने सौ बार मैं अपना मस्तक झुकाऊंगा। पर हिन्दू धर्म अपमानित हो, ऐसा कभी नहीं हो सकता।

जयसिंहपर इसका असर हुआ और उन्होंने जवाब दिया—"औरंगजेब बादशाह पृथ्वीपति हैं। उनसे आप मैत्री कर लें। शत्रुत्व करके इस कालमें निबाहना नहीं हो सकता। हम हिन्दू जयपुरके राजा हैं। आप भी हिन्दू ही हैं। आप हिन्दू धर्म स्थापन करते है, इसलिये हम आपके अनुकूल हैं।"

शिवाजीके अधीन हिंदुओंका जो उत्थान हुआ, उससे हिंदुस्थानके समस्त हिन्दुओंमें नवजीवनका सञ्चार हो गया था। पीड़ित जाति उन्हें अवतार और रक्षक मानती थी। सावनूरके हिन्दुओंने मुसलमानोंके अत्याचारोंसे त्रस्त होकर देखिये किस प्रकार उन्हें पुकारा है,—"यह यूसुफ बड़ा दुष्ट है। स्त्रियों और बच्चोंपर अत्याचार करता है। गोवध आदि निंद्य कर्म करता है। हमलोग इसके राज्यमें बहुत ही तंग आ गये हैं। आप हिन्दूधर्मके संस्थापक हैं, म्लेच्छोंके नाशक हैं; इसलिये आपकी शरणमें आये। हमलोग आपके पास आये इसलिये हमारे द्वारपर पहरा

खड़ा है। अन्न-जलके बिना हमें मार डालना चाहते हैं। इसीलिये रातका दिन करके (बहुत जल्द) आइये।"

इसके बाद फिर जब शिवाजीने तंजोरकी जागीर अपने भाई व्यंकोजीको इस शर्तपर लौटा दी कि वह मुसलमान बादशाहका सार्वभौमत्व न माने तब शिवाजीने लिखा है—"दुष्ट हिन्दु-विद्वेषियोंको अपने राज्यमें न रहने दें।"

स्वातंत्र्ययुद्धमें संताजी और उनके भाइयोंने जो पराक्रम किया उसका यथा-उचित सत्कार करनेके लिये राजाराम महाराजने जो महान् और अभिमानास्पद पद्वी दी वह पद्वी थी "हिन्दुराव"। जब जिंजिके किलेको शत्रुओंने मजबूतीसे घेर लिया था तब उस घिरावको तोड़नेके लिये मुगल सेनापतिके अधीनस्थ मराठे सैनिकोंको फोड़ लेनेका प्रयत्न किया गया—"गुप्तरूपसे नागोजी राजाके साथ बातचीत की गयी कि हम और आप यदि एक हो जायं तो यह सेना नष्ट करके हिन्दू-धर्मकी रक्षा कर सकेंगे। इसलिये आप मुसलमानोंका पक्ष त्यागकर हमारे पक्षमें आ मिलें।" तब नागोजी राजा मुसलमानोंकी नौकरी छोड़कर, ५ हजार फौजके साथ शहरमें गये......शिर्के मुगलोंके ताबेदार बने (कारण संभाजीने शिर्कोको कतल कराया था)। तब खण्डो बल्लालने कहा, "जिस प्रकार आपके परिवार-वालोंका कतल कराया उसी प्रकार हमारे भी तीन पुरुष हाथीके पैरोंतले कुचलवा कर मारे गये। परन्तु हिन्दुओंके राज्यके लिये हम उद्योग कर रहे हैं और इसमें आप भी हिस्सेदार हैं।" तब

शिर्के भी इस षड्यन्त्रमें सम्मिलित हुए और मराठोंसे मिले और राजाराम शत्रु के घिरावको तोड़कर वहांसे निकले।

शाहू महाराज और सवाई जयसिंहसे तो इस विषयमें वाद-विवाद ही चल पड़ा था कि, "हिन्दू-धर्मकी रक्षाके लिये हमने क्या किया और तुमने क्या किया ?" (सरदेसाई मध्यविभाग।)

यही भाव बाजीराव और नाना साहेबकी संतानोंमें था। इतिहासकारने लिखा है—"बहुतोंने बाजीरावके ही उद्योगका अनुकरण और परिपोष किया दिखाई देता है.........ब्रह्मेन्द्र स्वामी, गोविंद दीक्षित आदि देशभर भ्रमण करके अनुभव प्राप्त किये हुए साधु पुरुषोंमें यही 'हिंदुपदपादशाही' की भावना काम कर रही थी और वे अपने सब शिष्योंको इसी भावनासे उपदेश दिया करते थे।" (सरदेसाई) बाजीराव स्वयं कहते हैं—"अरे देखते क्या हो ? चलो कूदकर आगे बढ़ो। हिन्दू-पद-पादशाही होनेमें अब विलम्ब ही क्या है ?" (बाजीराव)

उस समय पण्डित-समाजमें ब्रह्मेन्द्र स्वामी मुख्य थे। परंतु जिस राज्यमें हिंदू-धर्मका उच्छेद होता है उस राज्यमें रहना उन्होंने उचित नहीं समझा।......'हिंदू-साम्राज्यमें देव ब्राह्मणोंपर अत्याचार' यह कितना लज्जाजनक विषय है यह बात उन्होंने शाहू महाराजको अच्छी तरह समझा दी। (सरदेसाई)

मथुराबाईने ब्रह्मेंद्र स्वामीको लिखा—"शंकराजी मोहिते, गणोजी शिंदे, खंडोजी नालकर, रामाजी खराडे, कृष्णाजी मोड आदि बड़े बड़े सरदारोंने राज्य-रक्षण करके शामलों (पुर्तगीजों)

को पराास्त किया और कोंकणमें हिंदू-धर्मको रक्षा की।" इस वीरांगना मथुराबाईने जो चिट्ठियां लिखी हैं उनमें देश-भक्तिकी इतनी प्राण-शक्ति भरी हुई है कि इन चिट्ठियोंको वे लोग अवश्य पढ़ें जो उस समयके हिंदू-उत्थानका वास्तविक भाव समझना चाहते हैं।

पुर्तगीजोंने गोवामें जो धर्मोन्माद-मूलक अत्याचार किया वह यूरोपके धर्मके नामपर होनेवाले अत्याचारका ही भारतीय संस्करण था। एक बार तो इन्होंने खुलेआम हिन्दू-धर्म-कर्म करनेकी बिलकुल मनाई कर दी थी। तब स्वाभिमानी अन्ताजी रघुनाथने इस आज्ञाका उल्लंघन किया और अन्य हिन्दुओंको भी ऐसा करनेके लिये उत्साहित करने लगा। पर वह यह अच्छी तरह जानता था कि शक्तिहीन निष्क्रिय प्रतिरोध शक्तिहीन निष्फल सहिष्णुता है। इसलिये इस प्रतिरोधके पीछे बाजीराव या चिम-णाजीका खड्ग होना चाहिये। अन्ताजी रघुनाथने ही हिन्दुस्थानके पुर्तगीज राज्यमें राज्यक्रांति करायी, बाजीरावके पक्षके समस्त हिन्दू नेताओंकी सहानुभूति प्राप्त की और ऐसा उद्योग किया कि गोवापर मराठे आक्रमण करें। चिमणाजी अप्पाके सेनापतित्वमें मराठोंने पुर्तगीजोंपर चढ़ाई की और उनके अधीनस्थ समस्त हिन्दू प्रदेशोंको स्वाधीन किया।

परन्तु इसी बीच, वसई पुर्तगीजोंके हाथसे निकलनेके पूर्व नादिरशाहने हिन्दुस्थानपर चढ़ाई की और उसने दिल्लीपर कब्जा किया। बाजीरावके मराठे दूतोंने उन्हें लिखा—"तहमास्म कुली-

खान (नादिरशाह) कोई देव नहीं है जो संसारको कतल कर डाले। जबरदस्तसे सन्धि करेगा। इसलिये बलवान फौजके साथ आइये। पहले जबरदस्ती और फिर सन्धि। अब सब राजपूत और स्वामी (बाजीराव) एक हो जायं तो काम बन जाय। सबको—बुंदेले आदिको—एकत्र करके बड़ा भाव दिखाना होगा। नादिरशाह वापिस नहीं जाना चाहता। वह सीधे हिन्दूराज्यपर चढ़ाई करेगा। सवाई जयसिंहकी यह इच्छा है कि दिल्लीके तखतपर उदयपुरके राणा बैठाये जायं। (सब) हिन्दू राजा सवाई आदि श्रीमान्‌की मार्ग-प्रतीक्षा कर रहे हैं। श्रीमान्‌का पृष्ठिबल होते ही जाट आदि फौज दिल्लीपर भेज सवाईजी स्वयं दिल्ली जायंगे।" (धोंडो गोविन्दकी चिट्ठियां बाजीरावके नाम)

परन्तु वसईकी लड़ाई अभी चल रही थी, इससे बाजीराव समयपर नहीं पहुंच सके। अपनी कठिनाइयोंको देखकर अपनी लाचारीपर उन्हें बड़ा मानसिक क्लेश हो रहा था। उन्होंने लिखा, "हिन्दुओंपर बड़ा भारी संकट उपस्थित है। अभीतक वसई हाथ नहीं आयी।...ऐसी अवस्थामें सब मराठी फौजें एक होकर चमेली पार हो जायं। उसे (नादिरको) इस ओर न आने देना-ऐसा विचार है।" (बाजीरावका पत्र ब्रह्मेंद्रस्वामीको)

परन्तु बाजीरावके अजेय धैर्यने सब विघ्नोंको पार किया। वे फिर लिखते हैं—"घरके झगड़ोंको अब किनारे करो। इस समय समग्र हिन्दुस्थानका एक शत्रु उत्पन्न हुआ है। मैं तो नर्मदा पार करके समस्त मराठा फौज चम्बलतक फैला दूंगा। फिर देखें, नादिरशाह कैसे आगे बढ़ता है! (बाजीरावके पत्र)

सवाई जयसिंहको अपने हिन्दुत्वका वैसा ही ज्वलन्त अभिमान था जैसा हिन्दुओंके अन्य नेताओंको। इन्होंने ही मालवेके पर्राज्यपीड़ित हिन्दुओंसे यह कहा था कि बाजीरावसे प्रार्थना करो कि वे हिन्दुओंकी स्वाधीनताके युद्धका क्षेत्र मालवेतक विस्तृत करें और इस प्रकार शिवाजीके अनुयायियोंकी संततिका उद्देश्य—हिन्दू-पद-पादशाहीकी स्थापनाका उद्देश्य पूरा करनेमें और आगे बढ़ें। अपनी एक चिट्ठीमें इन सुसंस्कृत और देशभक्त राजपूत राणाने लिखा है—

"सिधिश्री... ...नन्दलालजी प्रधान व भाईजी ठाकुर संस्थान इन्दोर अमरगढ़सु महाराजाधिराज श्रीसवाई जयसिंगजी कृत प्रणाम बंचजो।......सो आपको लिखते हैं कि बादशाहने चढ़ाई की है तो कुछ चिन्ता नहीं। श्रीपरमात्मा पार लगावेगा। बाजीराव पेशवासे हमने आपके निसबत कोलबचन कर लिया है।" पीछे फिर लिखा है—"हजार शाबाश है। आप सब मालवे सरदार एक रहके हिन्दु धर्मका कल्याण होना और मालवेमें हिन्दुधर्मकी बृद्धि होना। इस बातपर विचारकर मालवेमेंसे मुसलमानोंको नौमेद किये। और हिन्दुधर्म कायम रखा॥" (जयसिंहके पत्र २६—१०—१७२२ ई०)

हिन्दुपदपादशाही और हिन्दू-स्वातंत्र्यके इस प्रचण्ड उद्योगमें बाजीरावके पुत्र नाना साहब सबसे बड़े नेता हुए। इनका पत्रव्यवहार स्वयं एक अध्ययनकी वस्तु है। सर्वत्र इन्हें हिन्दुत्वका ही पक्ष करते हुए हम देखते हैं। ताराबाईको नाना

साहब लिखते हैं—"मुगल निरे हिन्दू राज्यके शत्रु हैं। उनके साथ आप मेलकी बातचीत करती हैं और मुझ अपने सेवकको दोष देती हैं।"

पानीपतके युद्धमें बड़ी भारी हानि हुई पर सर्वस्व नाश नहीं हुआ। उस युद्धसे दो आदमी बचे और उन्होंने सबको बचा लिया। नाना फड़नवीस और महादजी शिंदे हिन्दू जातिके दिमाग, हिन्दू जातिकी ढाल और तलवार थे। पानीपतमें भयंकर पराजय होनेके बाद भी ये ५० वर्षतक हिन्दू स्वातंत्र्यकी लड़ाई लड़े और ये विजयी हुए। इन्होंने हिन्दुओंको हिन्दुस्थानका प्रकृत शासक बना दिया। उस समय कैसा दिव्य राष्ट्रीय चैतन्य और हिन्दुत्वका सदभिमान जाग रहा था, यह उस समयके नीतिकुशल राजकीय लेखकोंके पत्रव्यवहारसे मालूम होता है। नाना और महादजीके दिल एक दूसरेसे साफ हो गये—यह वार्ता सुनकर महाराष्ट्रमें ओरसे छोरतक आनंद छा गया और निजामकी राजधानीसे गोविंदराव काले नाना फड़नवीसको लिखते हैं—

"पत्र देखते ही रोमांच हो गया। बहुत संतोष हुआ। चिट्ठीमें कहाँतक लिखूँ? ग्रंथके ग्रंथ मनमें उदय हुए। अटक नदीके इस ओर दक्षिण समुद्रतक हिन्दुओंका स्थान है—तुर्कस्थान नहीं। पाँडवोंके समयसे विक्रमाजिततक अपनी यही सीमा रही। उन्होंने इसकी रक्षा करके इसका उपभोग किया। उनके बादके राजा नालायक निकले। यवनोंका बल बढ़ा। चकलोंने (बाबरके वंश-

ओंने) हस्तिनापुरका राज्य ले लिया। अन्तको आलमगीरके समयमें यह नौबत आयी कि यज्ञोपवीतपर साढ़े तीन रुपया जजिया-कर बैठाया गया और गीला अन्न खरीदना पड़ा।

“उस समय स्वर्गवासी शिवाजी महाराज 'शककर्ता' और धर्मरक्षक पैदा हुए। उन्होंने देशके किसी कदर एक कोनेमें धर्म-रक्षण किया। बाद स्वर्गीय नाना साहब और भाऊ साहब ऐसे प्रचण्ड प्रतापसूर्य उदय हुए कि जिनका कोई जोड़ नहीं। इस समय श्रीमान्‌के पुण्यप्रतापसे और राजश्री पाटिल बुवाकी बुद्धि और तलवारके पराक्रमसे खोया हुआ सब कुछ वापिस मिल गया। पर यह सब कैसे हुआ? हम लोग जीत गये, इसलिये अब उसमें कुछ विशेष बात नहीं मालूम होती। यदि मुसलमानोंको ऐसी विजय प्राप्त होती तो उसपर न जाने कितने इतिहासग्रन्थ लिखे जाते। मुसलमानोंमें यह दस्तूर है कि जरासी कोई बात हो जाय तो आकाशतक उसका कीर्ति-स्तंभ खड़ा कर दें। पर हम हिन्दुओंमें यह चाल है कि महान्‌से महान् पराक्रम करनेपर भी उसका कोई जिक्र नहीं। वास्तवमें बात तो ऐसी हुई है कि अलभ्य वस्तुओंका लाभ हुआ है। यवन सोचते हैं और कहते हैं कि काफिरशाही स्थापित हो गयी।

“परंतु जिन जिनने हिन्दुस्थानमें सिर उठाया, उनके सिर पाटिल बुवाने उड़ा दिये। जो बातें कभी न हुईं वे बातें हो गयीं। शककर्ताके समान इनका प्रबन्ध करके उपभोग करना अभी आगे बाकी है। पुण्यबलमें क्या कसर रह जायगी और

किसको कैसी नजर लगेगी, नहीं मालूम ! अबतक जो हुआ हैं, वह केवल देशपर अधिकार, राज्यप्राप्ति यही नहीं है प्रत्युत वेदशास्त्ररक्षण, गो-ब्राह्मण-प्रतिपालन, सार्वभौमत्व और कीर्तियशके डंकेका बजना, ये बातें हैं। इन सबकी रक्षा करना आपका और पाटिल बुवाका काम है। इसमें यदि बाधा पड़ी तो शत्रु बलवान हो जायगा। संशय दूर हुआ। बहुत अच्छा हुआ। शत्रु सिरहाने पायताने हैं। अबतक मन बेचैन था। आपकी चिट्ठीसे मनका समाधान हुआ।" (१७६३ ई०)

इस एक पत्रके सरल सुन्दर लेखसे हमारे इतिहासका सच्चा भाव जितना प्रकट हो जाता है, उतना सैकड़ों बेमतलब ग्रन्थोंसे नहीं होता। कैसे स्वाभाविक ढङ्गसे हिन्दु और हिन्दुस्थान, इन शब्दोंकी उत्पत्तिका पता इससे चल जाता है और यह भी मालूम हो जाता है कि अभी गत पीढ़ीतक किस प्रकार हमारे पूर्वपुरुष इन नामोंको प्यार करते और उनसे अपनेको अभिन्न मानते थे। यह इतना स्पष्ट उदाहरण है कि इसके बाद दूसरा उदाहरण देनेकी आवश्यकता नहीं रहती।

हिन्दुत्वके तीन लक्षण

इस प्रकार वैदिक कालसे लेकर सन् १८१८ ई० में हमारे अन्तिम हिन्दू साम्राज्यके अन्ततक हिन्दु और हिन्दुस्थान, इन शब्दोंके इतिहासके भिन्न भिन्न प्रकरण देखनेके बाद अब हम यह विचार कर सकते हैं कि हिन्दुत्वके लक्षण क्या हैं। सबसे पहली बात जो मालूम होती है, वह यह है कि हमारे अनेक देश-वासियोंकी जो एक धारणा हो गयी है कि "हिन्दु" और "हिन्दु-स्थान"की उत्पत्ति मुसलमानोंके द्वेषभावसे हुई है—वह बिलकुल ही गलत है। अबतक इस विषयमें पिछले परिच्छेदोंमें जो कुछ कहा गया है उससे यह स्पष्ट है कि यह धारणा केवल मूर्खता-पूर्ण है। जिस समय महम्मदका जन्म भी नहीं हुआ था, जिस समय अरबोंकी कोई जाति भी नहीं पैदा हुई थी, उस समय यह प्राचीन राष्ट्र सिंधु या हिंदु नामसे विख्यात था। हम लोग इसी नामसे इसे पुकारते थे और बाहरवाले भी इसका यही नाम जानते थे। अरबोंने यह नाम नहीं ढूंढ़ निकाला। प्रत्युत उन्होंने ईरानि-यों, यहूदियों और अन्य जातियोंसे यह नाम जाना। परन्तु इन ऐतिहासिक बातोंको छोड़कर भी यदि हम विचार करें तो क्या यह समझना कुछ कठिन है कि यदि यह नाम वास्तवमें

तिरस्कारसूचक होता तो क्या हमारी जातिके श्रेष्ठ और वीर पुरुष इसे कदापि ग्रहण करते ? हमारी जातिके लोगोंको निश्चय ही अरबी, फारसी अपरिचित नहीं थी ! मुसलमान हमें काफिर भी कहा करते थे, पर यह नाम क्या कभी हिन्दुओंने ग्रहण किया ? यदि नहीं तो हिन्दुस्थान और हिन्दु, इन शब्दोंके बारेमें ही यह राष्ट्रीय अपमान उन्होंने क्यों स्वीकार किया ? बहुतसे लोग यह कहा करते हैं कि "हिन्दु" शब्द संस्कृतमें नहीं है। ठीक है, पर "हिन्दु" ही क्यों, बहुतसे शब्द हैं जो संस्कृतमें नहीं हैं पर नित्य जिनका प्रयोग हम करते हैं। जैसे बनारस, मराठा, सिख,गुजरात, पटना इत्यादि। पर क्या ये शब्द यहां बाहरसे आये हैं ? 'बनारस' शब्द संस्कृतमें नहीं है, फिर भी वह हमारा है और संस्कृतके "वाराणसी" शब्दका केवल प्राकृत रूप है। सच तो यह है कि किसी प्राकृत शब्दको हम शुद्ध संस्कृतमें ढूंढने लगें यही मूर्खता है। फिर भी, यह प्राकृत शब्द होनेपर भी, किसी किसी संस्कृत ग्रन्थमें यह शब्द मिलता है। इसे इस शब्दके महत्वका ही प्रबल प्रमाण समझना चाहिये। उदाहरणार्थ, मेरुतंत्रमें यह शब्द आता है। महाराष्ट्रके सुप्रसिद्ध कोषकार आपटे और बंगालके तारानाथ तर्कवाचस्पतिने अपने कोषोंमें इसका हवाला दिया है। और "शिव शिव न हिन्दुर्नय-वनः" यह वचन तो इतना प्रसिद्ध है कि उसका उल्लेख करनेकी भी आवश्यकता नहीं।

यह हो सकता है कि आधुनिक मुसलमानी फारसी भाषामें

इस शब्दमें कोई तिरस्कारसूचक भाव आ गया हो, पर इससे यह थोड़े ही होता है कि हिन्दू शब्दका मूल अर्थ ही ऐसा हो और वह "काला आदमी" का पर्यायवाची हो ? हिन्दी और हिन्दू शब्द फारसीमें हैं, पर उनका अर्थ "काला" नहीं है और यह भी हम जानते हैं कि ये शब्द हिन्दू शब्दके साथ ही सिन्धु या सिन्ध इसी संस्कृत शब्दसे निकले हुए हैं। यदि यह बात हो कि हिन्दू शब्दका अर्थ "काला" होनेसे हम लोग "हिन्दु" कहलाये तो फिर हिन्द और हिन्दी शब्द भी हममें क्यों लगाये गये जब कि उनका अर्थ तो "काला आदमी" नहीं है ? बात यह है कि यह शब्द आधुनिक फारसीसे निकला हुआ नहीं बल्कि ईरानकी प्राचीन जेंद भाषाके समयका है और उस समय "हप्तहिन्दु" का मतलब "सप्तसिन्धु" से ही था। हिन्दुओंका रंग "काला" देखकर उन्हें हिन्दू कहा गया हो—यह सम्भव ही नहीं है;क्योंकि बिलकुल सीधीसादी बात है कि अवेस्ता-कालके सप्तसिन्धु अर्थात् हिन्दू पारसिकों (ईरानियों) के समान ही शुभ्र वर्णवाले थे और ये दोनों पास पास ही और कभी कभी एक साथ ही रहते थे। कभी कभी याने ईसवी सन्‌के आरम्भमें पारथियन लोग हमारे सीमान्तप्रदेशोंको "श्वेतभारत" कहकर संबोधन करते थे। इस प्रकार हिन्दू शब्दका अर्थ मूलतः "काला आदमी" कभी रहा हो, यह सम्भव नहीं है।

इस प्रकार हिन्दू और हिन्दुस्थान ये गौरवयुक्त और देशाभिमानसूचक शब्द तबसे हमारे देश और राष्ट्रके नाम हैं, जब

मुसलमानों या मुसलमान ईरानियोंका पता भी नहीं था और इसलिये जहां हिन्दू शब्दका इतना गौरव है और वह इतना हमारे प्रेमका अधिकारी है, वहां इस बातका महत्व ही क्या है कि कोई ऐरेगैरे दीवाने इस नामको अपमानसूचक मानते हैं या क्या करते हैं। एक समय था जब खास इङ्गलैण्डमें "इङ्गलैण्ड" नाम उसके नार्मन विजेताओंकी नजरोंमें इतना गिर गया था कि वह एक दूसरेको गाली देनेके काम आता था। "क्या मैं अंगरेज हूं" यह कहना अपनी घोर भर्त्सना करना या "तुम अंगरेज हो" यह किसी नार्मनको कहना अक्षम्य अपराध समझा जाता था। पर क्या इससे अंगरेजोंने अपने देश और राष्ट्रका नाम बदल दिया और उसे "इङ्गलैण्ड"के बदले "नारमंडी" कहना शुरू किया? और क्या "इङ्गलैंड" या "अङ्गरेज" नाम त्याग कर देनेसे वे बड़े हो जाते? कदापि नहीं, प्रत्युत इसके विपरीत उन्होंने अपने पूर्वजोंके रक्त और नामका उत्तराधिकार नहीं छोड़ा,इसीसे आज हम देखते हैं कि जहां "नार्मन" शब्द और नार्मन देशका कहीं पता भी नहीं है, वहां अंगरेज जाति और अंगरेजी भाषाने संसारमें अपना सबसे महान् साम्राज्य स्थापित कर लिया है। अंगरेजी साम्राज्यका वैभव निश्चय ही महान् है, पर हिन्दू साम्राज्यके वैभवके सामने वह क्या चीज है!

लड़ाई-झगड़ोंके समय राष्ट्रोंका मन स्थिर नहीं रहता और ऐसे समय यदि फारसवाले तथा अन्य लोग "हिन्दू" शब्दका अर्थ "चोर" या "काला आदमी" ही मान बैठें,तो उन्हें यह भी

जानना चाहिये कि हिन्दू भी "मुसलमान" शब्द सदा भले आदमी-का ही वाचक नहीं समझते थे। किसीको "मुसलमान" या "मुसल्ला" कह देना उसे पशु कहनेसे भी बढ़कर गाली देना था। जिस समय दो राष्ट्रोंके बीच जीवन-मृत्युका संग्राम छिड़ता है उस समय इस तरह एक दूसरेको कोसना, गाली देना चाहे अनिवार्य हो, पर ये बातें तब भूल जानी चाहिये जब मनुष्य होशमें आकर भले आदमी कहलाना चाहते हैं। यह बात भी भूलनेकी नहीं है कि प्राचीन यहूदी लोग "हिन्दू" शब्दसे बल और तेजका अर्थ ग्रहण करते थे अर्थात् हमारे देश और राष्ट्रमें ये गुण थे। "सोहाब मो अलक" नामक एक अरबी महाकाव्यमें यह लिखा है कि, "घरवालोंके अत्याचार तो एक हिन्दूकी तल-वारके प्रहारसे भी अधिक प्रखर और भीषण होते हैं"; और "हिन्दूकी तरह जवाब देना" यह कहावत तो ईरानियोंमें प्रसिद्ध ही है, जिसका मतलब "हिन्दुस्थानी तलवारसे और दिलेरीके साथ गहरा जखम करना" है। बाबीलान देशके लोग सबसे अच्छे कपड़ेको "सिन्धु" कहा करते थे; क्योंकि ऐसा कपड़ा प्रायः सप्तसिन्धुसे ही उन्हें मिलता था और इससे भी यह जाहिर है कि ये लोग भी हमारे इस प्राचीन सिन्धु नामसे परिचित थे; और बाबिलानकी भाषामें इस शब्दका जो राष्ट्रीय अर्थ है उसके सिवाय और कोई दूसरा अर्थ भी है, यह हमने अबतक नहीं सुना।

अपने पड़ोसके अत्यन्त प्राचीन और अत्यंत सुसंस्कृत चीन

देशके सुप्रसिद्ध यात्री युआन चंगने "हिन्दू" नामका जो अर्थ किया है, उसे जानकर कोई भी हिन्दू आत्मगौरव बोध किये बिना न रहेगा। इसने "हिन्दू" शब्दको "इन्दु" शब्दसे मिलाया है और कहा है कि संसार इस जातिको जो इन्दु (चन्द्रमा) कहता है, वह ठीक ही है; क्योंकि यह जाति और इसकी संस्कृति, चंद्रमाके समान, दुःख-संतप्त मनुष्यके मनको सदा शांति, शीतलता और आनन्द देनेवाली है। क्या इन बातोंसे यह स्पष्ट नहीं होता कि अपने नामका आदर उत्पन्न करनेका मार्ग उस नामको छोड़ देना या उससे इन्कार करना नहीं बल्कि अपने शस्त्रके तेजसे, अपने उद्देश्यकी पवित्रतासे तथा अपनी उदात्त संस्कृतिसे संसारको विवश करना है कि वह उस नामके सामने सम्मानके साथ नतमस्तक हो। अब हम लोगोंमेंसे कुछ लोग अपना हौसला पूरा करनेके लिये मर्दुमशुमारीकी रिपोर्टोंमें अपने आपको "हिन्दू" न लिखाकर भले ही "आर्य" लिखायें; पर इससे होगा क्या सिवा इसके कि "आर्य" शब्दको भी ऊपरसे नीचे खींच लावें और शब्दकोषमें दासार्थवाची शब्दोंमें एक शब्द और बढ़ा दें? —जबतक हमारा राष्ट्र यथार्थमें उस प्राचीन आर्यगौरव और आर्यतेजको नहीं प्राप्त कर लेता।

परंतु यदि हम हिन्दु या हिन्दुत्व, इन नामोंको त्याग देनेके बेमतलब प्रस्तावपर गंभीरताके साथ कुछ भी विचार न करें और यह मूर्खतापूर्ण बात भी मान लें कि विदेशियोंने ही द्वेषबुद्धिसे हमारा यह नाम रखा तौभी क्या यह संभव है कि हम

इस नामको छोड़ सकें और कोई नया राष्ट्रीय नाम निर्माण करें? इस समय तो यही बात है कि "हिन्दू" शब्द हमारी जातिका मानो झंडा ही बन बठा है और यही एक ऐसी बात है जो कन्या-कुमारीसे काश्मीरतक और अटकसे लेकर कटकतक हमारी जातीय एकताको सबसे अधिक बल प्रदान करती और उसे दृढ़ करती है। क्या आप यह संभव समझते हैं कि इस नामको हम इतनी आसानीसे बदल,सकते हैं जैसे कोई अपने सिरकी टोपी बदल दे? एक बारकी घटना है कि एक सज्जन मर्दुमशुमारीकी रिपोर्टमें अपने आपको हिन्दू न लिखा कर "आर्य" लिखाना चाहते थे; क्योंकि उनके सिरपर भ्रमका यह भूत सवार हुआ था कि "हिन्दू" नाम घृणामूलक है और यह मुसलमानोंने रखा है और इसका अर्थ चोर और काला आदमी है। समय न होनेसे मैं उनके साथ बहुत बहस तो नहीं कर सका, पर मैंने उनसे एक ही प्रश्न किया। पूछा, "आपका नाम क्या है?" जवाब मिला "तख्त सिंह"। तब मैंने कहा, भले आदमी! पहले अपने नामको तो देखो। हिन्दू शब्द तो जियादासे जियादा विवादग्रस्त शब्द है, पर आपका नाम तो बिना किसी सन्देहके संकरी सृष्टि है और इसलिये पहले यह नाम बदलकर कोई शुद्ध प्राचीन आर्य नाम रखिये—जैसे मौद्गालायन या सिंहासनसिंह। तब बात छोड़कर उन्होंने यह बतलाना आरंभ किया कि नाम बदलनेसे अर्थोपार्ज्ज-नका सारा कारबार ही उलट-पलट जायगा और फिर जब दुनिया तख्तसिंह ही कहती रही तो हमारे सिंहासनसिंह घरमें ही बने

रहनेसे लाभ ही क्या ! तब मैंने कहा, "जब एक व्यक्तिका नाम बदलना इतना कठिन है, यही नहीं बल्कि हानिकारक है, तब भला एक समग्र जातिका नाम—वह नाम जो विदेशी नहीं बल्कि उतना ही स्वदेशी है जितने कि हमारे वेद हैं—बदलना कितना कठिन और कितना अधिक हानिकारक होगा, जरा सोचो।" कोई ऐसा नाम, जिसकी जड़ पातालमें पहुँची हो, बदलनेका प्रयत्न करना कितना व्यर्थ है, इसका इस वैयक्तिक वृतान्तसे भी अधिक अच्छा दृष्टान्त हमें पंजाबके हमारे खालसा पन्थमें मिलता है। यह वह पन्थ है जिसे हिन्दु जातिका सिरमौर और सूरमा कहना चाहिये, जिसे हमारे श्रेष्ठ गुरुने चुनकर तैयार किया और विजयानंदसे गर्जना की कि, "नील वस्त्रके कपड़े फाडे तुरक पाणी अमल गया।" और जो पंथ संघटित करनेका कारण भी यही था कि, "धर्म चलावन संत उबारण, दुष्ट दैत्यके मूल उपाटण, यहि काज धरामें जननम्। समझ लेहु साधुसम मननम्॥ (परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्। धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥)। योद्धाओंके उस दलका नाम "खालसा" रखा गया। जिन महात्मा नानकका आज नित्य "वाह गुरुकी फतेह, वाह गुरु खालसा" कहकर साभिनन्दन वन्दन किया जाता है, वे गुरु नानक दुःखसे कहा करते थे कि, "क्षत्रियां हि धर्म छोडिया म्लेंच्छ भाषा गहि। सृष्टि सब इक वर्ण हुई, धर्मकी गति रही !" "दरबार", "दीवान", "बहादुर" इत्यादि शब्द चोरोंकी तरह हमारे हरिमन्दिरके अन्तर्भागतक जा पहुंचे हैं।

पुराने जखमोंके ये चिह्न हैं। जखम भरकर अच्छे हो गये पर उनके ये चिह्न बाकी हैं और ऐसा मालूम होता है कि ये हमारे शरीरके साथ ही रहेंगे। इन चिह्नोंको नखोंसे खरोचकर मिटानेकी चेष्टा करनेमें जबतक हानिके सिवाय कोई लाभ नहीं, तबतक जो कुछ कर सकते हैं वह यही है कि इनको सह लें; क्योंकि ये चिह्न भी तो आखिर उसी रक्तरंजित रणभूमिमें लगे हुए जखमोंके हैं जिसने हमींको जयमाल पहनायी थी।

फिर भी यदि कोई ऐसे शब्द हैं जो चाहे हमारे देव-मन्दिरोंके नामोंसे भी कितने ही सम्बद्ध क्यों न हों पर जिन्हें त्याग देने या बदल देनेकी जरूरत है तो वे शब्द ये ही हैं; क्योंकि ये स्पष्ट ही विदेशी शब्द हैं और विदेशी प्रभुत्वके ही अवशेष स्वरूप हैं। जो लोग इन नामोंको न केवल सह लेते बल्कि प्यार करते हैं वे हिन्दु या हिन्दुस्थान नामको छोड़ देनेकी पुकार मचायें, क्या यह कुछ अप्रामाणिकसी बात नहीं है?—वह नाम जो हमारी जाति और देशका, हमारे पूर्व पुरुषों द्वारा रखा हुआ नाम है, जो संसारके सबसे प्राचीन और सबसे पूज्य ग्रन्थ वेदोंमें आया है—वह नाम जिसे सिन्धु नदीके दोनों ओर बसनेवाले हमारे करोड़ों देश-भाई अधिक नहीं तो कमसे कम विगत ४० शताब्दियोंसे धारण किये हुए हैं, जिस नाममें काश्मीरसे कन्या-कुमारीतक और अटकसे कटकतक हमारे समग्र देशका अन्तर्भाव होता है, जो नाम एक शब्दमें हमारी जाति और देशकी भौगोलिक स्थितिको प्रकट कर देता है, जो नाम अपनी विशिष्टता

और श्रेष्ठताका दर्शक —"राष्ट्रमार्यस्यचोत्तमम्" का परिचायक माना गया, उस नामको कोई कैसे छोड़ सकता है ? जिस नामके लिये हमारे शत्रु हमारा तिरस्कार करते थे और जिसके लिये हमारे शूरवीर योद्धा शालिवाहनसे शिवाजीतक महान्से महान् पराक्रमी पुरुष शताब्दियोंतक लड़ते रहे, वह नाम यही है— हिन्दु। यही हिन्दु नाम पद्मिनी और चित्तौड़की अस्थियोंपर खुदा था। यही हिन्दु नाम तुलसीदास, तुकाराम, रामकृष्ण और रामदासने अपनाया था। हिन्दुपद्पादशाहीका ध्यान ही तो रामदासका ध्यान था, शिवाजीका यही व्रत था, बाजीराव और बन्दा बहादुर, छत्रसाल और नानासाहेब, प्रताप और प्रतापादित्यकी महत्वाकांक्षाओंका यही तो ध्रुव तारा था। यही नाम उस झंडेपर अंकित था जिसकी रक्षामें एक दिनमें एक लाख हिन्दू वीर, शत्रुओंको मारते हुए, पानीपतके मैदानमें खेत रहे और उनके अग्र भागमें वीराग्रणी भाऊ भी हाथमें खड्ग लिये असिधारा तीर्थमें निमज्जित हुआ ! और इस बलिदानके पश्चात् भी, इस बलिदानके फलस्वरूप नाना और महादजी इसी हिन्दूपदपादशाहीके लिये आंधी और तूफानकी कोई परवा न कर, चट्टानों और आपदाओंको टालते हुए राष्ट्र-नौकाको उसके किनारेके समीपतक खे ले गये थे। और आज भी यही "हिन्दू" और "हिंदुस्थान" नाम नेपालके राजसिंहासनसे राहके भिखारीकी झोलीतक करोड़ों मनुष्योंपर अपना प्रभुत्व चला रहा है। इस नामका तिरस्कार करना अपनी जातिके हृदयको ही काटकर फेंक देना

है। ऐसा करनेके पूर्व ही तुम मर जाओगे। ऐसा करना केवल प्राणान्तक ही नहीं बल्कि असाध्य साधन है। "हिन्दु" और "हिन्दुस्थान" इन शब्दोंको उनके स्थानोंसे अलग करनेका ख्याल हिमालयको ही उसके स्थानसे हटानेके समान है। भयानक और कल्पनातीत उत्पात और उलटफेर करनेवाला कोई भीषण भूकंप ही यह काम कर सकता है।

हिन्दु और हिन्दुस्थान इन नामोंपर जो यह मिथ्या आक्षेप है कि ये नाम विदेशियोंके रखे हुए हैं, यदि यही एक बात हो तो इसका समाधान निर्विवाद ऐतिहासिक प्रमाणोंसे ही अनायास हो सकता है। पर बात यह है कि इस आक्षेपके साथ कुछ लोगोंके दिलमें एक गुप्त भय भी है। वे यह समझते हैं कि यदि यह नाम हम अपनाते हैं तो यह समझा जायगा कि हम उन सब बातोंको माननेवाले हैं जो "हिन्दू धर्म" के नामपर प्रसिद्ध हैं। कोई इस भयको स्पष्ट रूपसे प्रकट करे या न करे, पर इस भयसे बहुतसे लोग यह बात माननेको तैयार नहीं होते कि यह नाम विदेशियोंका रखा हुआ नहीं है। यह भय बिलकुल निराधार है, यह बात भी नहीं। परन्तु जिन्हें इस प्रकारकी आशंका होती है उन्हें वैसा स्पष्ट कहकर बतलाना चाहिये कि अमुक कारणसे हम हिन्दू कहलानेको तैयार नहीं हैं—मिथ्या और निराधार आक्षेपके बहाने वस्तुस्थितिको छिपाना कदापि उचित नहीं। "हिन्दुत्व" और "हिन्दू धर्मसंप्रदाय (हिन्दुइज्म)" ये दो शब्द आपाततः एक दूसरेके समान हैं और इससे अनेकोंका

मतिभ्रम होता है। इन दो शब्दोंके अर्थमें जो अन्तर है वह आगे स्पष्ट किया जायगा। यहां इतना ही बतला देना पर्याप्त होगा कि यदि कोई शब्द विदेशियों द्वारा उत्पन्न किया हुआ हो तो वह यही "हिन्दुइज्म" शब्द है और इसलिये इस बातसे सावधान रहना चाहिये कि इस नवीन शब्दसे हमारे विचारोंमें कोई गड़बड़ न हो। कोई भी मनुष्य वेदोंका प्रामाण्य माने बिना भी हिन्दू हो सकता है, यह इस बातसे बिलकुल स्पष्ट है कि और तो और हमारे सहस्रों जैनो भाई परम्परासे अपने आपको हिन्दू कहते चले आते हैं और उन्हें यदि कोई किसी भिन्न नामसे पुकारे तो इसमें वे अपना अपमान समझेंगे। यह वस्तुस्थितिकी बात है जो हमने सामने रख दी है। प्रस्तुत विषयकी मीमांसा अभी नहीं की है जो आगे करेंगे। तबतक हम यह आशा करते हैं कि, हमारे पाठक अपना मत किसी प्रकार पूर्वग्रहदूषित न कर लेंगे और यह ध्यानमें रखेंगे कि यहांतक जो चर्चा की गयी उसमें किसी धर्म-संप्रदायका विचार नहीं किया है बल्कि हिन्दुत्वका ही राष्ट्रीय, जातीय और सांस्कृतिक पहलूसे विचार किया है।

अब हम उस समन्वयसाधक कल्पनाका विश्लेषण कर सकते हैं जो कल्पना मानवी भाषाको ज्ञात कल्पनाओंमें एक अत्यंत व्यापक कल्पना है और जिसकी समन्वयशक्ति बड़ी ही विचित्र है। हिन्दुत्व शब्द हिन्दु शब्दसे बना है। यह हम देख चुके कि हमारी जातिके अत्यन्त प्राचीन और अत्यंत पुनीत ग्रन्थोंमें सप्त-सिन्धु या हप्तहिन्दु नाम उस देशका है जिसमें वैदिक राष्ट्रकी

वृद्धि हुई। हिन्दू और हिन्दुस्थान इन नामोंका यह दैशिक अर्थ इन नामोंके साथ यदि अधिक नहीं तो कमसे कम ५००० वर्षसे बराबर चला आ रहा है और "हिन्दुस्थान" शब्दसे सिन्धु नदीसे सिन्धु (समुद्र) पर्यन्तके समग्र देशका बोध होता रहा है। किसी जातिके लोगोंमें परस्पराकर्षण, सामर्थ्य और ऐक्यभाव होनेके लिये जो सबसे बड़ी बात जरूरी होती है वह यही है कि उनका ऐसा वासस्थान हो जो अन्दरसे सुसम्बद्ध और बाहर सीमाबद्ध हो, और उस वासस्थानका ऐसा नाम हो जिसका उच्चारण करते ही मातृभूमिकी दिव्य मूर्त्ति और पूर्व पुरुषोंकी गौरवमय परम्परा एक साथ नेत्रोंके सामने खड़ी हो जाय। किसी शक्तिशाली और एकीभूत राष्ट्रके लिये ये जो दो आवश्यकताएं होती हैं, सौभाग्यसे ये दोनों हमें प्राप्त हैं। हमारा देश इतना विशाल होनेपर भी ऐसा सुसंघटित है, दूसरे देशोंसे उसका पाथक्य इतना सुस्पष्ट है और साथ ही इतनी शक्तिके साथ सुरक्षित है कि संसारमें कोई ऐसा देश प्रकृति देवीने नहीं निर्माण किया जिसकी दैशिक एकता इससे अधिक स्पष्ट और अखण्ड हो। इसका नाम 'हिन्दुस्थान' या 'हिन्दू' भी वैसा ही है। इस नामको लेते ही हमारे नेत्रोंके सामने अपनी मातृ-भूमिकी प्रतिमा खड़ी हो जाती है और यह नाम उसके सब दैशिक और प्राकृतिक रूप सामने उपस्थित कर उसे एक जीती-जागती प्रतिमा बना देता है। हिन्दुस्थानका अर्थ हिन्दुओंका देश होनेसे हिन्दुत्वका प्रथम मूलतत्व यही दैशिक होना चाहिये। कोई हिन्दू तभी हिन्दू

हो सकता है जब वह स्वयं या अपने हिन्दुस्थानवासी पूर्वजोंके उत्तराधिकारी होनेके नाते, हिन्दुस्थानका नागरिक हो और इस देशको अपनी मातृभूमि समझता हो। फ्रांस, अमेरिका आदि देशोंमें हिन्दू शब्द ठीक इसी अर्थसे व्यवहृत होता है। उसमें धार्मिक या सांस्कृतिक अर्थकी ध्वनि नहीं होती और सिन्धु शब्दसे निकले हुए अन्य शब्दोंकी तरह यदि यह "हिन्दू" अपने मूल अर्थका ही वाचक रहने दिया जाता, उसमें और कोई नवीन अर्थ न आने दिया जाता तो हिन्दू शब्दका एकमात्र अर्थ हिंदुस्थानका नागरिक ही होता और कुछ नहीं, जैसा कि गुजरात और महाराष्ट्रमें "हिंदी" शब्दका अर्थ है।

परन्तु हम यहां जो अनुसन्धान कर रहे हैं वह इस बातका नहीं कि किस शब्दका क्या अर्थ होता या होना चाहिये था बल्कि इस बातका अनुसन्धान कर रहे हैं कि वस्तुस्थिति क्या है। क्या होना चाहिये, इसका विचार करनेमें कोई अनौचित्य हो यह बात नहीं, बल्कि यह समझिये कि इसका विचार करना भी अत्यन्त आवश्यक है, उपस्थित विषयसे भी अधिक उत्साहप्रद है; परन्तु उसके लिये पहले यह जानना होगा कि अभी क्या है। अभी क्या है, यह अच्छी तरह जाननेसे आगे क्या होना चाहिये इसका विचार किया जा सकता है। इसलिये बड़ी सावधानीके साथ ही हमें "हिन्दुत्व क्या है" यह समझनेके लिये इस बातकी जांच करनी होगी कि इस शब्दमें क्या क्या भाव भरे हुए हैं। इसलिये यद्यपि हिन्दू शब्दका मूल अर्थ "हिन्दी" के समान "हिन्दुस्थानी"

ी है ,तोभी यदि हम किसी हिन्दुस्थानवासी मुसलमानको हिन्दू
कहेंगे तो इस शब्दके प्रयोगकी व्याप्ति इतनी खिंच जाती है कि
वह वहीं टूट जाती है, अर्थका अनर्थ हो जाता है। यह हो सकता
है कि भविष्यत्‌में कोई ऐसा समय आ जाय जब हिन्दू शब्दका
अर्थ केवल हिन्दुस्थानी या हिन्दुस्थानवासी ही रह जाय। पर
वह दिन तभी उदय होगा जब सांप्रदायिक अहङ्कारकी परापहारी
शैतानी सेना नष्ट भ्रष्ट हो जाय और संप्रदायधर्म उन सनातन
सिद्धान्तोंके अधीन होकर रहें जो सबके समान रूपसे आधार-
भूत सिद्धान्त हैं, जिनकी बुनियादपर ही मनुष्य-समाज सुस्थिर
रह सकता है। परन्तु जबतक इस परम वांछनीय, सर्वसमाज-
सुख-साधक एकीकरणके प्रथम किरणोंका भी क्षितिजपर कोई
चिह्न नहीं दिखायी देता तबतक वस्तुस्थिति जो जैसी है उसकी
उपेक्षा करना केवल मूर्खता है। जबतक और दूसरे धर्म-संप्र-
दाय अपने ऐसे मतोंको नहीं छोड़ देते जिनके कारण बार बार
युद्ध होनेकी नौबत आती है तबतक कोई सांस्कृतिक या राष्ट्रीय
संघ अपने बन्धनोंको — खासकर उन बन्धनोंको जिनसे संघकी
अखण्डता और सामर्थ्य बढ़ती है—कभी ढीले नहीं कर सकता।
कोई अमेरिकन भी भारतका नागरिक बन सकता है। यदि वह
यथार्थमें भारतीय नागरिक बने तो उसे हम भारतीय या हिन्दु-
स्थानी कह सकते हैं, अपना देशवासी मानकर उसके साथ वैसा ही
व्यवहार कर सकते हैं। परन्तु हमारे देशको अपनानेके साथ साथ
जबतक वह हमारी संस्कृति और इतिहासको भी नहीं अपनाता,

जबतक उसके शरीरमें हमारा रक्त नहीं प्रवाहित होता और जबतक हमारा देश उसे प्यारा ही नहीं बल्कि पूज्य नहीं होता तबतक हम उसे हिन्दू-संघमें शामिल नहीं कर सकते। कारण, हिन्दुत्वकी पहली बात यद्यपि यही है कि वह स्वयं और अपने पूर्वपुरुषोंके उत्तराधिकारसे इस देशका नागरिक हो तोभी केवल यही एक बात नहीं है जिससे कोई भी मनुष्य हिन्दू बन जा सके। हिन्दू नाममें उसके दैशिक अर्थकी अपेक्षा और भी बहुतसा अर्थ भरा हुआ है।

"हिन्दू" शब्द "भारतवासी" या "हिन्दुस्थानी" शब्दोंका समानार्थक नहीं है और इसका अर्थ केवल "हिन्दुस्थानका रहनेवाला" नहीं है यह बात जब निश्चित हुई तब स्वभावतः हिन्दुत्वके दूसरे लक्षणका विचार यहाँसे आरम्भ होता है। हिन्दू हिन्दुस्थानी शासनके केवल नागरिक नहीं हैं; क्योंकि उनका जो संघटन है वह केवल इस बातपर नहीं है कि सब एक ही मातृभूमिको प्यार करते हैं; बल्कि उनमें परस्पर रक्त-सम्बन्ध भी है। हिन्दू केवल एक राष्ट्र नहीं हैं, बल्कि एक जाति भी हैं। "जाति" शब्द "जा" धातुसे निकलकर (जिसका अर्थ जनना है), भ्रातृ-संघ, एक ही बीजसे निकली हुई जाति जिसमें एक ही रक्त प्रवाहित हो रहा है इस अर्थका वाचक होता है। सब हिन्दुओंकी नसोंमें उसी बलशाली जातिका रक्त दौड़ रहा है जो वैदिक ऋषियोंसे, सिन्धुओंसे उत्पन्न हुई है। अनेक बार छलसे यह प्रश्न किया जाता है कि, "क्या आप लोग भी कोई एक जाति हैं? क्या यह कहा जा

सकता है कि आप लोगोंमें एक ही रक्त प्रवाहित हो रहा है ?" इस प्रश्नका उत्तर हम यह प्रतिप्रश्न करके ही दे सकते हैं कि, "क्या अंगरेज एक जाति हैं ? आंग्ल रक्त, फ्रेञ्च रक्त, जर्मन रक्त या चीनी रक्त नामकी भी कोई चीज दुनियांमें है ?" जो लोग दूसरी दूसरी जातियोंसे विवाह-सम्बन्ध करके दूसरी जातियोंका रक्त अपने अन्दर ले आते हैं वे क्या कभी एक रक्त होनेका दावा कर सकते हैं और एक जाति कहला सकते हैं ? यदि वे ऐसा कर सकते हैं तो हिन्दू तो सिर ऊंचा करके और भी जोरके साथ ऐसा कह सकते हैं। कारण, जिस जाति-भेदका यथार्थ स्वरूप आप लोगोंने अभीतक नहीं समझा, जिसका वास्तविक अर्थ अभी-तक आप लोगोंकी समझमें नहीं आया, उस जाति-भेदसे आप लोग कहते हैं कि हिन्दू-जातिमें अलग अलग रक्त-प्रवाह जहांके तहां ही रुके रहे, उनका परस्पर मिश्रण नहीं हुआ; परन्तु आपके ध्यानमें यह बात नहीं आती कि उस जाति-भेदने अपने रक्तकी अपेक्षा दूसरोंका रक्त हमारे अन्दर न आने देनेका ही अधिक काम किया है। यही नहीं, बल्कि इन अलग अलग जातियोंके अस्तित्वसे ही क्या यह बात सिद्ध नहीं होती कि ब्राह्मणसे चांडालतक संपूर्ण हिन्दू जातिमें एक ही रक्त प्रवाहित हो रहा है ? सरसरी निगाहसे भी अपनी किसी भी स्मृतिका अवलोकन करनेसे यह मालूम हो जाता है कि किसी समय अनुलोम और प्रतिलोम विवाह हुआ करते थे और उन्हींसे आज जो इतनी जातियां दिखायी देती हैं, उत्पन्न हुई हैं। यदि किसी शूद्रा

स्त्रीसे किसी क्षत्रिय पुरुषके सन्तान हो तो वह सन्तति "उग्र" जातिकी होती है। उसी प्रकार यदि किसी उग्रा स्त्रीसे क्षत्रियके पुत्र हो तो वह श्वपच जातिका होता है। ब्राह्मणी माता और शूद्र पितासे उत्पन्न पुत्र चांड़ाल होता है। सत्यकाम जाबालिकी वैदिक कथासे महादजी शिन्देतक हमारे इतिहासका प्रत्येक पृष्ठ यही बतलाता है कि हमारे रक्तकी गङ्गा कालके उच्चातिउच्च वैदिक शिखरसे निकलकर आधुनिक इतिहासके मैदानमें बराबरसे प्रवाहित होती चली आ रही है और इस प्रकार प्रवाहित होनेमें उसने अन्य अनेक प्रवाहोंको अपने अन्दर मिला लिया है, कितने ही पतितोंको पावन किया है; विस्तार, गांभीर्य और सम्पन्नतासे प्रतिदिन बढ़ती हुई इस गङ्गाने किसी जङ्गल या मरुभूमिमें लुप्त हो जानेके भयको पार किया है और इस प्रकार पहलेसे अधिक शुद्धता और अधिक वेगके साथ आज वह अखण्डरूपसे बह रही है। अपने अन्दर जो जो कुछ ऊसर और दरिद्र था उसे उपजाऊ और समृद्ध बनानेके लिये और अपने अन्दर जो जो कुछ उत्पादक और सम्पन्नकारक था उसकी वृद्धि जारी रखनेके लिये जो जो साधन हमारे उदात्तचरित और देशभक्त पूर्वजोंको आवश्यक प्रतीत हुए उन उन साधनोंसे इस पावन प्रवाहका मार्ग उन्होंने जातिभेद संस्थासे प्रशस्त किया था। जातिभेद संस्थाके द्वारा यही काम हुआ है।

यह बात केवल चातुर्वर्ण्यके चार प्रधान वर्णोंके संमिश्र विवाहोंसे उत्पन्न उपजातियोंके सम्बन्धमें या इन मुख्य] जातियों

और इन उपजातियोंके परस्पर सम्बन्धसे उत्पन्न हुई सन्ततिके ही सम्बन्धमें नहीं है, बल्कि अति प्राचीन कालमें गरोह बनाकर सबसे अलग पृथक् पृथक् रहनेवाली "जङ्गली" जातियोंके सम्बन्धमें भी यही बात है। इसका दृष्टांत यदि देखना हो तो मलाबार या नेपालमें देखिये। वहां उच्चकुलके हिन्दुओंको अन्य याने हिंद्वेतर जातियोंकी कन्याओंसे विवाह करनेकी अनुज्ञा है। ये जातियां आर्येतर हैं यह कल्पना ठीक भी हो तौभी इन जातियोंने हिन्दू-संस्कृतिकी रक्षा करनेमें जो प्रेम और पराक्रम दिखाया उससे वे हिन्दू-जातिमें मिला ली गयीं, यही नहीं, बल्कि सब बन्धनोंमें जो सबसे कोमल बन्धन है उस विवाह-बन्धनसे उन्हें सदाके लिये हिन्दू-जातिसे बांध रखा है। नागवंश क्या द्राविड़ वंश है? नहीं, फिर भी जब अग्निवंशके पुरुषोंको नागकन्याएं अर्पण की गयीं और इन दोनों वंशोंमें जब चन्द्रवंश और सूर्यवंशके क्षत्रियोंने अपनी कन्याओंको व्याह दिया तब इनमें उनमें भेद ही क्या रहा? बौद्धोंके समयमें जब चातुर्वर्ण्य और जाति-भेदके बन्धन टूट चुके थे तबकी बात ही जाने दीजिये। पर इधर हर्षवर्द्धन-तक भी वही बात थी—परस्पर विवाह बराबर हुआ करते थे। पांडवोंके ही कुलका दृष्टान्त लीजिये। पराशर ऋषि ब्राह्मण थे। एक धीवरकी रूपवती कन्यापर वे मुग्ध हुए और इन्हींकी सन्तान जगद्विख्यात कृष्णद्वैपायन भगवान वेदव्यास हुए। इन व्यास भगवानने क्षत्रिय कुलकी राजकन्या अंबा और अंबालिकासे दो पुत्र उत्पन्न किये। इन दो पुत्रोंमेंसे पांडने "नियोग" पद्धतिका

अवलम्बन कर सन्तान जननेकी अनुमति अपनी स्त्रियोंको दी। और उन स्त्रियोंने अज्ञात जातिके पुरुषोंके प्रेमकी याचना करके महाभारतके नायकोंको उत्पन्न किया। इसी प्रकार उस कालके कर्ण, बभ्रुवाहन, घटोत्कच, विदुर तथा अन्य व्यक्तियोंके इतिहासका उल्लेख न करके उससे बहुत इधर आधुनिक कालके चंद्रगुप्तका ही उदाहरण देखनेके लिये हम अपने पाठकोंसे कहते हैं। चंद्रगुप्तने एक ब्राह्मणकन्यासे विवाह किया और इनसे अशोकके पिताकी उत्पत्ति हुई। और इस अशोकने युवराज रहते एक वैश्यकन्यासे विवाह किया। हर्ष वैश्य था और उसने अपनी कन्या एक क्षत्रिय राजपुत्रको ब्याह दी। व्याधकर्मा एक व्याधका पुत्र था और उसकी माता उस व्याधकी सहधर्मिणी एक विप्रकन्या थी। और यह व्याधकर्मा विक्रमादित्यका यज्ञाचार्य हुआ था। कृष्ण भट्ट ब्राह्मण होकर भी एक चांडालकन्यापर इतना मोहित हुआ कि उसने खुल्लमखुल्ला उससे विवाह किया। इसने फिर "मातंगी पन्थ" नामका एक धर्म-सम्प्रदाय चलाया। ये सब लोग हिन्दू ही कहलाते थे और आज भी उन्हें कोई अहिन्दु नहीं कहता। उन्हें हिन्दू कहलानेका अधिकार भी है। पर बात यहीं खतम नहीं होती। यह भी हो सकता है कि कोई स्त्री या पुरुष अपने अच्छे-बुरे कर्मसे एक जातिसे उन्नत या च्युत होकर दूसरी जातिमें मिल सकते हैं। "शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम्।" "न कुलं कुलमित्याहुराचारं कुलमुच्यते। आचार कुशलो राजन् इह चामुत्र नंदते॥ उपासते ये न पूर्वां द्विजा संध्यां

न पश्चिमां । सर्वांस्तान् धार्मिको राजा शूद्रकर्मणि योजयेत् ॥" यह केवल धमकी ही नहीं थी—ऐसा होता भी था। बहुतसे क्षत्रिय कृषिकर्म या अन्य व्यवसाय करने लगे, इससे क्षत्रियके पदसे च्युत हो गये और अन्य जातियोंके बने। इसी प्रकार बहुतसे वीर पुरुष और कभी कभी तो समस्त जातिके सब मनुष्य अपने शौर्य और पराक्रमसे क्षत्रिय पदको प्राप्त होकर क्षत्रिय कहलाने लगे। एक जातिसे बहिष्कृत होकर दूसरी जातिमें मिल जाना, यह बात तो एक मामूली बात हो गयी थी।

वैदिक आज्ञासे स्थापित चातुर्वर्ण्यके माननेवालोंकी ही नहीं, बल्कि हिन्दू-जातिके अवैदिक संप्रदायोंकी भी यही बात है। जैसे बौद्धकालमें यह बात थी कि एक ही घरमें पिता यदि बौद्ध हैं तो माता वैदिक हैं और पुत्र जैन हैं; वैसे ही आज भी गुजरातमें जैनों और वैष्णवोंमें परस्पर शादी ब्याह होता है, मारवाड़ और राजपूतानेमें भी होता है और पञ्जाब और सिन्धमें सिख और सनातनियोंमें भी परस्पर ऐसा ही संबंध है। इसके अतिरिक्त आज जो मानभाव या लिंगायत या सिख या सतनामी हैं वे कल हिन्दू थे और आजके कोई हिन्दू कल ब्राह्मो, लिंगायत या सिख हो सकते हैं। पर जातिकी एकता और अखंडता वैसी ही बनी हुई है।

इस जातीय एकताकी पूर्ण अभिव्यक्ति करनेवाला कोई ऐसा दूसरा शब्द नहीं है जैसा कि हिन्दू है। हम लोगोंमेंसे कोई आर्य थे और कोई अनार्य। पर कोई आयर हो या नायर, थे सब हिन्दू

ही और सबमें जो रक्त था वह भी था एक हिन्दू-रक्त ही। हम लोगोंमेंसे कुछ ब्राह्मण हैं, कुछ नमःशूद्र हैं। पर कोई ब्राह्मण हो या चांडाल, हैं सब हिन्दू ही है और सबका रक्त है भी एक हिन्दू-रक्त ही। हम लोगोंमेंसे कोई दाक्षिणात्य हैं, कोई गौड़ हैं; पर गौड़ हों या सारस्वत, हैं सब हिन्दू ही और सबका रक्त भी है एक हिन्दू-रक्त ही। हम लोगोंमेंसे कोई राक्षस थे और कोई यक्ष; पर राक्षस हों या यक्ष, हैं हम सब हिन्दू ही और हमारा रक्त भी है एक हिन्दू-रक्त ही। हमलोगोंमें कोई वानर थे और कोई किन्नर; पर वानर हों या नर, हम हैं सब हिन्दू ही और हमारा रक्त भी है एक हिन्दू-रक्त ही। हमलोगोंमें कोई जैन हैं और कोई जङ्गम; पर जैन हों या जङ्गम, हम सब हैं हिन्दू ही और हमारा रक्त भी है एक हिन्दू-रक्त ही। हमलोगोंमें कोई एकेश्वरवादी हैं, कोई अनेकेश्वरवादी; कोई आस्तिक हैं, कोई नास्तिक; पर ईश्वर-वादी हों या नास्तिक, हैं हम सब हिन्दू ही और हमारा रक्त भी है एक हिन्दू-रक्त ही। हम केवल एक राष्ट्र नहीं हैं, बल्कि एक जाति हैं, जन्मसे ही भाई भाई हैं। और कुछ कोई चीज नहीं; यहां तो हृदयकी एकताका प्रश्न है। हम यह अनुभव करते हैं कि वही रक्त जो राम और कृष्ण, बुद्ध और महावीर, नानक और चैतन्य, बसव और माधव, रोहिदास और तिरुवेल्लुवर इनकी नसोंमें प्रवाहित होता था; वही रक्त समग्र हिन्दू-जातिकी नसोंमें प्रवा-हित होता और प्रत्येक हिन्दूके हृदयमें स्पन्दन करता है। हम-लोग यह अनुभव करते हैं कि हम सब एक जातिके हैं और यह

जाति रक्तके प्रियतम बन्धनोंसे बंधी हुई एक अखण्ड जाति है। ऐसा हम अपने अन्तःकरणमें अनुभव करते हैं और इसलिये यह ऐसा ही है।

यदि ठीक विचार किया जाय तो सारे संसारकी मनुष्य-जाति एक ही है; क्योंकि मनुष्य-रक्तसे ही यह उत्पन्न हुई और मनुष्यका रक्त ही इसमें प्रवाहित हो रहा है। यह पूर्ण सत्य है, बाकी सब बातें अपेक्षाकृत सत्य हैं। जाति-जातिके बीचमें मनुष्य जो कृत्रिम दीवारें खड़ी करता है, उसे प्रकृति बराबरसे ही नष्ट करती चली आ रही है। रक्त-मिश्रणको रोकनेका प्रयत्न बालूकी भीत उठाना मात्र है। सब धर्माचार्योंकी सब आज्ञाओंकी अपेक्षा स्त्री-पुरुषका परस्पर प्रेमाकर्षण अधिक बलवान प्रमाणित हुआ है। यही नहीं, बल्कि अन्दमान द्वीपके आदिम निवासियोंमें भी आर्यरक्तके तुषार परस्पर मिले हुए हैं। मनुष्य अधिकसे अधिक जो कुछ दावा कर सकता है और इतिहास भी इस संबं-धमें जो कुछ बतलाता है वह यही है कि मनुष्यमात्रके शरीरमें समग्र मानव-जातिका रक्त प्रवाहित हो रहा है। इस ध्रुवसे उस ध्रुवतक समग्र मानव-जातिकी एकता ही अखंड सत्य है। अन्य बातें अंशतः और सापेक्षतः सत्य हैं।

इस सापेक्ष विचारकी दृष्टिसे देखें तो संसारमें दो ही जातियां ऐसी हैं, एक हिन्दू और दूसरी यहूदी, जो अधिकारके साथ यह कह सकती हैं कि हम एक जाति हैं। एक हिन्दू यदि किसी अन्य उपजातिके हिन्दूसे विवाह करे तो बहुत होगा अपनी

बिरादरीसे च्युत होगा पर उससे उसका "हिन्दुत्व" कहीं नहीं जाता। कोई हिन्दू अपने किसी संप्रदायके विरुद्ध किसी अच्छे-बुरे नये धर्म-संप्रदायको मान ले, बशर्ते कि वह संप्रदाय इसी देशका हो, किसी हिन्दू द्वारा ही प्रवर्त्तित हुआ हो; तो वह अपने पहले संप्रदाय या बिरादरीसे निकाल बाहर हो सकता है पर उसका हिन्दुत्व कोई नहीं छीन सकता; कारण हिन्दुत्वका एक महान् और प्रधान लक्षण ही यह है कि जिस मनुष्यमें हिन्दूका रक्त है वह हिन्दू ही है। इसलिये जो लोग सिन्धु नदीसे सिन्धु (सागर) पर्यन्त इस विशाल देशको अपनी पितृभूमि मानते हैं और फलतः यह भी मानते हैं कि हम सप्तसिन्धुओंके वंशजोंकी सन्तति हैं, उन्हींके रक्तसे यह शरीर बना है उनके बारेमें यह कह सकते हैं कि वे हिन्दुत्वके सबसे प्रधान लक्षणोंमेंसे जो दो लक्षण हैं उनसे युक्त हैं।

परन्तु ये दो ही लक्षण हुए। थोड़ा विचार करनेसे यह मालूम होगा कि एक ही पितृभूमि और एक ही रक्तका होना, इन दो लक्षणोंसे ही हिन्दुत्वकी पूरी व्याख्या नहीं होती। हिन्दुस्थानके मुसलमान यदि अपने अज्ञान-जनित कुसंस्कारोंको त्याग दें तो वे इस देशको अपनी पितृभूमि मानकर इसपर वैसी श्रद्धा कर सकते हैं। कई देशभक्त और उदात्तचित्त मुसलमान ऐसे हैं भी जो इस देशको अपनी पितृभूमि मानते हैं। जिस तरहसे उनका धर्मान्तर हुआ, जिस तरहसे लाखों करोड़ों हिन्दू जबर्दस्ती मुसलमान बनाये गये वह बात अभी इतनी ताजी है कि वे चाहें

भी तो इस बातको नहीं भूल सकते कि उनके अन्दर भी हिन्दू-रक्त ही दौड़ रहा है। परन्तु हम जो इस बातकी जांच कर रहे हैं क वस्तुस्थित क्या है, न कि वस्तुस्थिति क्या होनी चाहिये, क्या यह कह सकते हैं कि ये मुसलमान हिन्दू हैं? काश्मीर तथा हिन्दुस्थानके अन्य अनेक भागोंमें ऐसे मुसलमान हैं और दक्षिण भारतमें ऐसे किरुतान हैं जो जातिभेदके नियमोंको यहांतक मानते हैं कि अपनी बिरादरीके अन्दर ही शादी ब्याह करते हैं। इससे यह स्पष्ट है कि उनका हिन्दू-रक्त ज्यों-का-त्यों बना हुआ है; उनमें विदेशी रक्तका मिश्रण नहीं हुआ है। फिर भी हिन्दू शब्दका प्रयोग जिस अर्थमें होता है उस अर्थमें उन्हें हिन्दू तो नहीं कह सकते। कारण, हम हिन्दू जो एक जाति हैं उसका कारण केवल यही नहीं है कि हम एक पितृभूमिके उपासक और एक ही रक्तके उत्तराधिकारी हैं; बल्कि इसके साथ ही एक बात है जो हिन्दूके हिन्दुत्वका वैसा ही महान् लक्षण है जैसे पूर्वकथित ये दो लक्षण। वह बात यह है कि हम हिन्दू एक संस्कृतिके मानने-वाले हैं। यह हिन्दू-संस्कृति महान् संस्कृति है जिसका भाव प्रकट करनेके लिये संस्कृत शब्द ही अत्यन्त उपयुक्त और सार्थ है। कारण, इस शब्दसे "संस्कृत" भाषा भी सूचित होती है जिस संस्कृत भाषामें वह संस्कृति संरक्षित है, जिसमें हिन्दू-जातिके इतिहासमें जो जो कुछ संग्राह्य और उत्तम है उसका प्रकाश हुआ और जिसमें वह संपूर्ण ज्ञान संचित भी हुआ। हम हिन्दू एक हैं, कारण हम लोग एक राष्ट्र हैं, एक जाति हैं और हमारी एक संस्कृति है।

पर संस्कृति आखिर क्या वस्तु है ? संस्कृति मानवी मनकी अभिव्यक्ति है। संस्कृति प्रकृतिके मानवी रूपान्तर और विस्तार-का इतिहास है। यदि प्रकृति परमात्मा द्वारा निर्मित हुई है तो संस्कृति मनुष्य द्वारा उसीकी अनुकृति है। इस संस्कृतिका सर्वोत्तम रूप प्रकृति और मनुष्यपर मनुष्यकी आत्माकी पूर्ण विजय है। जहां कहीं और जहांतक मनुष्य प्रकृतिको इस प्रकार बना लेता है जिससे आत्माको आनन्द हो वहीं उसी हदतक संस्कृतिका आरम्भ होता है। और जहां सामर्थ्य, सौंदय और प्रेम, इनके संबन्धमें मनुष्य अपनी स्वर्गीय आकांक्षाएं पूर्ण करके परमानन्दके सब मार्ग ढूंढ़कर जीवनका पूर्ण विकास और उसका ऐश्वर्य अनुभव कर लेता है, वहां संस्कृतिकी पूर्ण विजय होती है।

किसी राष्ट्रकी संस्कृतिका इतिहास उस राष्ट्रके विचार, आचार और पुरुषार्थ-सिद्धिका इतिहास होता है। काव्य और कलासे उसके विचारोंका पता लगता है, इतिहास और सामा-जिक संस्थाओंसे उसके आचार और सम्पादित पुरुषार्थ मालूम होते हैं। इनमेंसे किसी भी बातमें मनुष्य अन्य मनुष्योंसे अलग नहीं रह सकता। अंदमानकी आदिम वन्य जातिकी काठकी पटियोंको जोड़-जाड़कर भद्दीसी शकलकी डोंगीमें बैठकर (जिसे वहां डुंगी कहते हैं) उसका अनुकरण बिलकुल आधुनिक अमे-रिकन ड्रेटनाटके तैयार करनेमें कुछ न कुछ होता ही है। पेरि-सकी नवयुवतियोंकी पोशाकमें जो बिलकुल नयी फैशन निकली

है, वह पातुआ जातिकी स्त्रियोंके नंगे कमरबन्दमें लटकनेवाले पत्तोंके नोमलहंगेकी ही नकल है।

पर इसपर भी डुंगी डुंगी ही है और क्रेटनाट क्रेटनाट ही है। इन दोनोंमें सादृश्यकी अपेक्षा वैदृश्य ही अधिक है और इसलिये वह सादृश्य जो है नहींके बराबर हो जाता है। उसी प्रकार अन्य देशवासियोंके समान हिन्दुओंने भी संसारको बहुतसी बातें दी हैं और बहुतसी ली भी हैं, तथापि अन्य देशवासियोंकी संस्कृतिकी अपेक्षा उनकी संस्कृति इतनी भिन्न है कि हिन्दू-संस्कृतिको देखकर दर्शकको किसी अन्य संस्कृतिका भ्रम नहीं हो सकता। और दूसरी बात यह है कि हिन्दुओंमें परस्पर चाहे जितने भेद हों, उन भेदोंकी अपेक्षा उनकी परस्परसे मिलनेवाली बातें ही अधिक हैं और इसलिये कोई भी इस बातको अस्वीकार नहीं कर सकता कि हिन्दुओंका भी सर्वसामान्य एक इतिहास है, एक साहित्य है और एक संस्कृति है।

"हिन्दुओंका कोई इतिहास नहीं" यह जो अज्ञान-जन्य या स्वार्थमूलक शंखनाद वर्तमान संसारको सुननेका अभ्यास हो गया है उससे भरमाये गये लोगोंको यह बात कुछ विपरीतसी प्रतीत होगी, पर इसमें जरा भी सन्देह करनेका कोई कारण नहीं कि संसारमें हिन्दू ही एक जाति हैं जिन्होंने अनेक भूडोलोंके धक्के खाकर और जलप्रलयोंमेंसे होकर भी अपने इतिहासको सुरक्षित रखा है। यह इतिहास वेदोंसे आरंभ होता है। ये वेद हमारी जातिके इतिहासका प्रथम अध्याय हैं। प्रत्येक हिन्दू पालनेमें जो

गीत सुनता है वह सती सीताका गीत है। हमलोगोंमें कुछ लोग रामचन्द्रको ईश्वरका अवतार मानते हैं, कुछ उन्हें एक महापुरुष और वीराग्रणी मानते हैं और सब लोग उन्हें अपनी जातिका अत्यन्त प्रसिद्ध सार्वभौम राजा मानते हैं। हनुमान और भीमसेन प्रत्येक युवकके लिये अखंड बलदायी और शारीरिक उन्नतिके आदर्श देवता हैं। सावित्री और दमयन्ती प्रत्येक हिन्दू स्त्रीके अखंड पातिव्रत और अकलंक प्रेमके ध्येय हैं। गोकुलके उस ग्वालपर राधाने जो प्रेम किया उसकी प्रतिध्वनि, जहां जहां हिन्दू-प्रेमी अपनी प्रेमिकाको आलिङ्गन करता है, वहां वहां उत्थित होती है। कौरव-पांडवोंका महायुद्ध, कर्णार्जुन और भीम-दुश्शासनके तुमुल द्वंद्व हजारों वर्ष पहले कुरुक्षेत्रमें हुए थे, पर आज भी एक झोपड़ीसे लेकर महान् राजप्रासादतक हृदयको विचलित कर देनेवाले रसोंके साथ उन युद्धोंके गीत गाये जाते हैं। अभिमन्यु अर्जुनको जितना प्रिय चाहे न भी हो, उतना प्रिय आज हम लोगोंमेंसे प्रत्येक व्यक्तिको है। कन्याकुमारीसे काश्मीरतक, उस कमलनेत्र बालवीरके युद्धमें पतन होनेकी वार्ता सुनकर अर्जुनने जिस व्याकुलताके साथ क्रन्दन किया होगा, उसी व्याकुलताके साथ आज भी समग्र हिन्दुस्थान रोकर अश्रुपात करता है। इससे अधिक और क्या कहें? मुट्ठीभर बालूके कणोंकी तरह हमें यदि कोई दशों दिशाओंमें फेंककर तितर-बितर कर दे तौभी अकेले रामायण और महाभारत ये दोही ग्रन्थ हमें फिरसे एकत्र करके एक जाति बना सकते हैं। हम मैजिनीका

जीवनचरित पढ़ते हैं तो मुंहसे यह उद्गार निकलता है कि "देखिये, कैसे देशभक्त हैं ये लोग !" पर जब माधवाचार्यका जीवनचरित पढ़ते हैं तो यही कह उठते हैं, "हमलोगोंमें इतनी देशभक्ति और इतनी प्रचण्ड शक्ति है।" पृथ्वीराजकी हारपर बङ्गाल विलाप करता है; गुरु गोविन्द सिंहके शहीद बच्चोंका हाल पढ़कर महाराष्ट्रका कंठ रूंध जाता है ! उत्तर भारतका आर्य-समाजी इतिहासकार यह अनुभव करता है कि हरिहर और बुक्क हमारे लिये लड़े थे; वैसे ही दक्षिण भारतका सनातनी यह अनु-भव करता है कि गुरु तेगबहादुरने हमारे लिये अपनी जान दी थी। हमारे राजा एक थे, हमारे राज्य एक थे ; हमारी स्थिति एक थी, हमारी गति एक थी ; हमारी हार एक थी, हमारी जीत एक थी। मोकाबसय्या और पिसाल, जयचंद और कालापहाड़ हम लोगोंमें पैदा हुए इससे हम सबकी ही एक साथ गर्दन झुकती है। अशोक, भास्कराचार्य, पाणिनी और कपिलके नाम हम सबमें चैतन्य उत्पन्न कर देते हैं, उनसे हम अपनेको धन्य समझते हैं।

इसपर, कहनेवाले कहेंगे कि हिन्दू हिन्दुओंके बीच आपसकी लड़ाइयां भी होती रही हैं ! हमारा जवाब यह है कि आपसकी लड़ाइयां नहीं हुईं किस जातिके अन्दर ? क्या अङ्गरेजोंमें आप-सकी लड़ाइयां नहीं हुईं ? इटली, जर्मनी, फ्रांस, अमेरिका आदि देशोंमें एक राज्य दूसरे राज्यसे, एक पन्थ दूसरे पन्थसे, एक श्रेणीके लोग दूसरी श्रेणीके लोगोंसे जो अभीतक लड़ते-भिड़ते

चले आ रहे हैं उनका क्या जवाब है ? फिर भी ये एक एक राष्ट्र हैं और इनका एक एक ही इतिहास है। यदि इनके लिये यह बात है तो हिन्दुओंकी भी वही बात है। और यदि हिन्दुओंका एक इतिहास न हो तो संसारमें किसीका भी एक इतिहास नहीं है।

जिस प्रकार इतिहाससे हमें अपनी जातिके पराक्रमोंका पता चलता है उसी प्रकार अपने साहित्यके साद्यन्त इतिहास-से अपनी जातिके विचारोंका आदर्श सामने उपस्थित होता है। विचार शब्दसे अभिन्न कहा जाता है, और हमारा साहित्य संस्कृत भाषासे अभिन्न है और इसलिये संस्कृत ही हमारी जन्म-भाषा है। इसी भाषामें हमारी माताएं बोलती थीं और इसी भाषासे हमारी सभी वर्तमान भाषाएं निकली हुई हैं। हमारे देवता संस्कृतमें बोलते थे, हमारे ऋषि संस्कृतमें विचार करते थे, हमारे कवि संस्कृतमें काव्य करते थे। हम लोगोंमें जो जो कुछ उत्तम है—उत्तम विचार, उत्तम कल्पना, उत्तम सुभाषित—वह सब संस्कृतमें ही प्रकट होना चाहता है। करोड़ों मनुष्य अब भी यही समझते हैं कि हमारे देवता सदा इसी भाषामें बोलते हैं; अन्य लोग यह समझते हैं कि यह हमारे पूर्वजोंकी भाषा है; और सब लोग एक मत होकर यही मानते हैं कि यह सर्वोत्तम भाषा है, यह हम सबकी परम्परासे प्राप्त संपत्ति है, यही हमारी जमा है और इसीसे गुजराती और गुरुमुखी, सिन्धी और हिन्दी, तामिल और तेलगु, मराठी और मलयालम्, बङ्गाली और सिंघाली ये सब एक ही जननीके उदरसे निकली हुई भाषाएं, संपन्न हुई

है। हम सबके मनोविकारों और आकांक्षाओंको स्फूर्त्ति और प्रोत्साहन देकर एक ही आदर्शकी ओर गति देनेवाली यही मर्मस्थ ज्ञानशलाका है। यह केवल भाषा नहीं है, बहुतोंके लिये यह मंत्र है और सबके लिये यह सङ्गीत है। सब जैन वेदोंको सर्वथा प्रमाण नहीं मानते। पर वेद सबसे प्राचीन ग्रन्थ और जैनोंकी जननि-जातिके इतिहास होनेसे, उन वेदोंको अपने कहनेका जितना अधिकार अन्य हिन्दुओंको है उतना ही जैनोंको भी है। आदिपुराण किसी सनातनी कविका लिखा नहीं है, पर जैन और सनातनी दोनोंकी यह समान संपत्ति है। वसव पुराण लिंगायतोंका मुख्य धर्मग्रन्थ है; पर यह कन्नड़ भाषाका सर्वश्रेष्ठ तथा ऐतिहासिक ग्रन्थ होनेसे इसपर जितना लिङ्गायतोंका अधिकार है उतना ही अन्य हिन्दुओंका भी। गुरु गोविन्दसिंहके "विचित्र नाटक" पर बङ्गालके हिन्दुओंका जितना अधिकार है उतना ही "चैतन्यचरितामृत" पर सिखोंका अधिकार है। कालिदास और भवभूति,चरक और सुश्रुत, आर्यभट्ट और वराहमिहिर, भास और अश्वघोष, जयदेव और जगन्नाथ—इन्होंने जो रचनाएं कीं वे हम सबके लिये कीं,वे हम सबका हृदय अपनी ओर खींचती हैं और वे हम सबकी संपत्ति हैं। बंगालके किसी हिन्दूके सामने तामिल भाषाके कवि कंबकी कोई रचना रखिये और साथ ही हाफिजकी कोई किताब रखिये और उससे पूछिये कि इन दोनोंमें तुम्हारी चीज कौनसी है तो वह कहेगा, "कंब कवि मेरे हैं!" महाराष्ट्रके किसी हिन्दूके सामने रवीन्द्रनाथकी रचना

रखिये, साथ ही शेक्सपियरकी; और उससे पूछिये कि इनमें तुम्हारा कौन है। वह यही कहेगा कि,"रवीन्द्र! रवीन्द्र मेरे हैं।"

कलाकौशल और वास्तुविद्याके जितने काम हैं वे सब भी हमारी जातिकी समान संपत्ति हैं, चाहे उनमेंसे कोई वैदिक काल-के कलादर्शका द्योतक हो या कोई अवैदिक आदर्शका। कारण जिन मजूरों द्वारा ये तैयार कराये गये, जिन मालिकोंने उनसे ये काम कराये, जिन करदाताओंने इनके लिये धन दिया और जिन राजाओंने इन कामोंको आरंभ कराया और उनका प्रबंध किया, वे वैदिक रहे हों या अवैदिक, थे इसी माहन् हिन्दू-जातिके जिसका वासस्थान सिन्धुसे सिन्धुपर्यंत यह सारा हिन्दुस्थान है। आज जो सनातनी हैं उन्होंने ही बौद्धकालमें बौद्धोंके स्तूप, विहार और भवन निर्माण करनेमें मिहनत-मजूरी और धनसे सहायता की; और उस समय जो बौद्ध थे उन्होंने ही अब सनातनधर्मकी मूर्तियां और मन्दिर निर्माण करनेमें हाथ लगाया।

छोटी छोटी बातोंमें चाहे परस्पर कितनी ही भिन्नता क्यों न हो, हम सब हिन्दुओंके समान संस्कार और आचार-विचार रहे हैं और उनका नियामक नियम भी एक ही रहा है। ये संस्कार, आचार-विचार और यह नियम ये ही दो बातें हम सब हिन्दुओं-की मूलभूत एकताके कार्य और कारण दोनों हैं। हिन्दू-व्यवहार-शास्त्रके आधारपर बना हुआ हिन्दू-धर्मशास्त्र, आपाततः उसमें अनेक भेद और यत्र-तत्र परस्पर विरोध होनेपर भी, इतना

बरदस्त है कि देश-काल और परिस्थितिसे अनेकों उलटफेर होनेपर भी उसका मूल विशिष्टरूप ज्यों-का-त्यों स्थिर है। अमेरिका और ब्रिटिश कामनवेल्थके कानून बनानेवाले यंत्र यद्यपि नित्य नये नये कानून निकालते जा रहे हैं तथापि हम लोग अभीतक अपने धर्मशास्त्रके मूलतत्त्वों और उसकी विशिष्ट विकास-पद्धतिको ही मानते आ रहे हैं। मुसलमानी व्यवहार-पद्धति भी अपनी विशिष्टता लिये हुई है, यद्यपि खोजा या बोहरा तथा इसी मेलके अन्य मुसलमान भी अनेक बातोंमें मुसलमानी कानूनके विपरीत हिन्दू-व्यवहार-शास्त्रको ही मानते हैं। महाराष्ट्रके कुछ हिन्दू-व्यवहार पंजाबके हिन्दुओंके आचार-व्यवहारोंसे भिन्न हो सकते हैं; पर पंजाब और महाराष्ट्र, सिन्ध और बङ्गाल आदि सभी प्रदेशोंके हिन्दुओंमें व्यवहारोंकी समता इतनी अधिक है कि महाराष्ट्रमें मानी जानेवाली स्मृतिका वचन बङ्गालमें मानी जानेवाली स्मृतिके वचनकी प्रतिध्वनिमात्र होती है, बङ्गालमें धर्मशास्त्रका जो विधान मिलता है वह महाराष्ट्रके धर्मशास्त्र-विधानका प्रतिबिंबमात्र होता है। हिन्दू-जातिके सब समाजोंद्वारा माने जानेवाले सब नियमों, रिवाजों और व्यवहारोंको एकत्र करके देखा जाय तो यह तुरंत दिखायी देगा कि यह तो हिन्दू-धर्मशास्त्रका ही एक सम्यक् अध्याय है। परंतु ऐसी कोई बात अंगरेजी, मुसलमानी या जापानी धर्मशास्त्र-संग्रहमें न दिखायी देगी, चाहे कोई कितनी ही बुद्धि लगाकर खींच-तान या अर्थका अनर्थ करके ऐसा दिखानेका प्रयत्न करे।

हम हिन्दुओंके उत्सव और त्योहार एक हैं। हमारे विधि और संस्कार एक हैं। दसहरा और दिवाली, रक्षा-बन्धन और होलीका, जहां जहां हिन्दू हैं, वहां वहां सानन्द स्वागत है। दिवालीके दिन, चाहे कोई सिख हो या जैन, ब्राह्मण हो या पंचम, समग्र हिन्दू-जाति आनन्दोत्फुल्ल हो उठती है; और यह केवल हिन्दुस्थानमें ही नहीं, बल्कि उस बृहत् हिन्दुस्थानमें भी जो संसारके सब देशोंमें अपने पैर फैला रहा है। तराईके जंगलतकमें एक कुटी भी ऐसी दिखायी न देगी जिसने उस दिन दीप-दान न किया हो। उसी प्रकार राखीबन्धनके दिन पंजाबकी प्रसन्नवदना कुमारिकाओंसे लेकर मद्रासके कर्मनिष्ठ ब्राह्मणोंतक सबके हृदयमें प्रेमका समुद्र उमड़ आता है और एक दूसरेके हाथ-में राखी बांधते हुए वे सच ही कहते हैं, "भाई भाई एक ठाईं। भेद नाईं भेद नाईं॥" फिर भी हमने उन धार्मिक मनःसंस्कारों-का यहां उल्लेख भी नहीं किया जो हम सबके समान मनः-संस्कार हैं, अथवा किसी रीति-नीतिका भी धार्मिक विशिष्टताकी दृष्टिसे विचार नहीं किया ; कारण, हिन्दुत्वके मूलभूत तत्वोंका विचार किसी धार्मिक दृष्टिसे नहीं बल्कि जातीय दृष्टिसे ही करना था, तथापि राष्ट्रीय अथवा जातीय दृष्टिसे भी हमारे ये भिन्न भिन्न तीर्थस्थान हमारी जातिकी सर्वसामान्य परंपरागत संपत्ति हैं यह स्पष्ट है। जगन्नाथकी रथ-यात्रा, अमृतसरकी वैशाखी, कुंभ और अर्धकुंभी ये सब हम लोगोंके सच्चे और जीवित महासम्मेलन ही थे और उनसे हमारे जीवन और विचारों-

का प्रवाह राष्ट्र-शरीरमें सदा ही प्रवाहित रहा करता था। इन यात्राओं और मेलोंमें बहुतसी ऐसी बातें हैं जिन्हें कुछ लोग शास्त्र और धर्म समझकर और कुछ लोग सामाजिक उत्सवके प्रसंग जानकर पालन करते हैं। पर सबके हृदयपर इन मेलों और यात्राओंके जिस तत्वकी छाप लग जाती है वह तत्व यही है कि हमारा जीवन सर्वसम्पन्न होनेके लिये यदि कोई बात अत्यन्त प्रयोजनीय है तो वह इस समय हिन्दू-जातिके अखण्ड और एकीभूत जीवनका ही अस्तित्व है।

संक्षेपमें ये ही बातें हैं—प्रतिपाद्य विषय इसके आगे बढ़ने भी नहीं देता—जो हमारी संस्कृतिके अधारभूत तत्वकी बातें हैं और जिनके कारण हमारी सांस्कृतिक एकता सिद्ध है। हम हिन्दू केवल एक राष्ट्र और केवल एक जाति ही नहीं हैं, बल्कि इन दोनों बातोंके फलस्वरूप हमारी एक ही संस्कृति भी है जिसकी अभिव्यक्ति और रक्षा, मुख्यतः और मूलतः, संस्कृतके द्वारा हुई है, जो संस्कृत हमारी जातिकी सच्ची जन्मभाषा है। प्रत्येक मनुष्य जो हिन्दू है इस संस्कृतिका उत्तराधिकारी है, और उसका आध्यात्मिक जन्म इसी संस्कृतिसे होता है जैसे उसका भौतिक जन्म उसकी जन्मभूमि और पूर्वजोंके रक्तसे होता है।

अतएव हिन्दू वह है जो सिन्धुसे सिन्धुपर्यन्त फैले हुए इस देशको अपना पितृदेश मानकर पूजता हो; जिसके शरीरमें उस महान् जातिका रक्त प्रवाहित हो रहा हो जिसका मूल वैदिक सप्तसिन्धुओंमें सर्वप्रथम देख पड़ता है और जो "हिन्दू" नामसे

संसारमें विख्यात हुई; और जो हिन्दुस्थानको अपनी पितृभूमि और हिन्दू जातिको अपनी जाति माननेके कारण उस हिन्दू-संस्कृतिको अपनी संस्कृति मानता है जो संस्कृति समान इतिहास, समान पूर्व परंपरा और पूज्य पूर्वपुरुष, समान साहित्य, समान शिल्पशास्त्र, समान धर्मशास्त्र, समान पर्व और उत्सवोंद्वारा प्रकट होती है। प्रत्येक हिन्दू इन सब बातोंको अन्य सब हिन्दुओंके साथ एक ही रूप और प्रकारसे मानता हो यह इसका मतलब नहीं; बल्कि यह मतलब है कि हिन्दू-संस्कृतिकी इन बातोंमें प्रत्येक हिन्दू अपने अन्य हिन्दू-भाइयोंके साथ ऐसा समान भाव अनुभव करता है जैसा कोई अरब या अंगरेज नहीं करता। कोई अहिन्दू भी इन बातोंमेंसे किसी किसी बातमें हिन्दुओंकासा भाव रख सकता है, पर ऐसा समान भाव उसमें जितना हो सकता है उससे हिन्दुओंसे विसदृश—विषम भाव ही उसमें अधिक होता है। इसीलिये वे क्रिस्तान और मुसलमान, जो कुछ काल पूर्व हिन्दू थे और धर्मान्तर होनेके बाद कमसे कम पहला पीढ़ीमें अपने नये संप्रदायके लाचार अनुयायी ही थे, हिन्दुस्थानको अपना पितृदेश मानते और अपने शरीरमें शुद्ध रक्त होनेका दावा कर सकते हैं पर वे हिन्दू नहीं कहला सकते; कारण नया "धर्म" स्वीकार करके उन्होंने हिन्दू-संस्कृतिको मानना छोड़ दिया। उनके पूर्वपुरुष, उनके पूर्वज-पूजनकी पद्धति, उनके पर्व और उत्सव, उनके आदर्श और जीवन-संस्कार हिन्दुओंके नहीं रहे! इस तरह हिन्दुत्वकी जो तीसरी बात है कि

वह हिन्दू-जातिकी संस्कृतिको माननेवाला हो उससे हम हिन्दुत्व-का ऐसा लक्षण बांध सकते हैं जिसमें अतिव्याप्तिका जरा भी दोष न हो।

अब किसी ऐसे बोहरा या खोजा मुसलमानका उदाहरण लीजिये जो देशभक्त हो। वह उस हिन्दुस्थानको अपना पितृ-देश मानकर पूजता है जो वास्तवमें उसके पूर्वजोंका देश था। उसमें शुद्ध हिन्दू-रक्त भी है जैसे अनेक मुसलमानोंमें होता है, खासकर ऐसे मुसलमानोंमें जो नये नये मुसलमान बने हों। इस तरह यह भी मान लें कि उसमें शुद्ध हिन्दू-रक्त भी है। अब यह भी मान लीजिये कि वह आदमी समझदार है और इस देश-के इतिहासको ही अपना इतिहास और हमारे पूर्वजोंको अपने पूर्वज मानता है (और सचमुच ही बोहरे और खोजे दशमहा-वतारोंको मानते हैं और ग्यारहवाँ अवतार महम्मदका कह कर उसमें जोड़ते हैं)। उनका दायविभाग हिन्दूधर्मशास्त्रके अनु-सार ही होता है। इस प्रकार राष्ट्र, जाति और संस्कृति ये जो तीन बातें हिन्दुत्वकी हैं उन तीनोंमें वह हिन्दू है। कुछ पर्व और उत्सव उसके भिन्न हैं, उसके देवताओं और महापुरुषोंमें कुछ नये देवता और महापुरुष आकर और जुट गये होंगे। पर, हम बराबर यह कहते आये हैं कि छोटी-छोटी बातोंमें यत्र-तत्र कुछ भिन्नता हो जानेसे कोई हिन्दू-संस्कृतिके मंडलसे बहिष्कृत नहीं हो जाता। हिन्दू-जातिके अन्दर अनेक ऐसी उपजातियां हैं जिनके अनेक रिवाज परस्परसे भिन्न ही नहीं बल्कि परस्पर विरुद्ध भी हैं।

फिर भी वे सब हिन्दू हैं। उसी प्रकार स्वदेशको स्वदेश मानने-वाले बोहरा या खोजा या कोई ईसाई जिनमें हिन्दुत्वके ये तीनों लक्षण इस हद्तक मौजूद हों वे हिन्दू क्यों न माने जायँ ?

ऐसे लोग सचमुच हिन्दू माने जा सकते थे। परंतु हिन्दुत्व-के एक विशिष्ट लक्षणकी कसौटीपर कसनेसे उनका हिन्दू कहा-नेका अधिकार नष्ट हो जाता है। वह विशिष्ट लक्षण हिन्दू-संस्कृतिके अन्दर आ जा सकता है। पर वह इतना महत्वपूर्ण है कि हिन्दू-संस्कृतिकी अन्य बातोंमें वह लुप्त नहीं किया जा सकता। इसीलिये उसका विशेष विवेचन करना आवश्यक है। इस विवेचनमें हिन्दुत्वके धार्मिक स्वरूपकी ओर ध्यान देनेकी आवश्यकता होगी। यहांतक हमने जो कुछ प्रतिपादन किया उसमें इस बातका विचार नहीं किया, इसलिये नहीं कि ऐसा करनेमें हम किसी प्रकार सकुचते थे, बलिक इसलिये कि हिंदुत्वके लक्षणोंका विवेचन अधिक सांगोपांग और परिणाम-कारक करनेके लिये हमने धार्मिक पहलूके विचारके लिये एक पृथक् अध्याय ही रख छोड़ा है। सब पहलुओंसे इस विषयका विचार करनेकी सामग्री यहांतक पूरे तौरपर जुट गयी है और अब "हिन्दुत्व" और "हिन्दू-धर्म" इन दोनोंके बीच क्या अन्तर है, यह निश्चित करनेका काम अधिक सुलभ होनेवाला है।

हिन्दुत्वकी परिभाषा

"हिन्दुत्व" और "हिन्दू-धर्म" ये दोनों शब्द "हिन्दू" शब्दसे निकले हुए हैं, इसलिये उनका अर्थ समग्र हिन्दू-जातिसे सम्बन्ध रखनेवाला होता है। हिन्दू-धर्मकी जिस किसी परिभाषामें हमारी जातिका कोई भी अंग छूट जाय अथवा उसे अपने धार्मिक संस्कारोंको छिपा रखना पड़े वह परिभाषा किसी कामकी न होगी। हिन्दू-धर्म वह धर्म है जो सब हिन्दुओंका सामान्य धर्म है। यह सामान्य हिन्दू-धर्म क्या है यह जाननेके लिये हमें यह जानना होगा कि हम हिन्दू कहते किसको हैं—हिन्दू-शब्दकी परिभाषा क्या है। परंतु इस बातको भूलकर कि हिन्दू कौन है यह जाननेका मुक्त मनसे प्रयत्न किये बिना हिन्दू-धर्मकी परिभाषा नहीं हो सकती, बहुतसे लोग हिन्दू-धर्मकी ही पहले व्याख्या करने लग जाते हैं और हिन्दू-धर्मके कोई ऐसे लक्षण नहीं पाते जिनमें अतिव्याप्तिका दोष न हो और जिनमें सब हिन्दू-समाजोंका समावेश हो जाय। परिणाम यह होता है कि उन्हें ऐसे सर्व सामान्य लक्षण नहीं मिलते और लाचार होकर वे इस नतीजेपर पहुंचते हैं कि अमुक जातियां हिन्दू ही नहीं हैं! "हिन्दू ही नहीं हैं" इसलिये नहीं कि जिन लक्षणोंकी कसौटी-

पर इन्हें कसनेका प्रयत्न किया जाता है उनमें कोई अव्याप्ति दोष हो, बल्कि इसलिये कि ये जातियां उन बातोंको धर्म ही नहीं मानतीं जिनपर ये लोग अपने मनसे ही हिन्दू-धर्मकी छाप लगाना चाहते हैं! "हिन्दू कौन है?" इस प्रश्नका उत्तर देनेकी यह सचमुच ही उलटी रीति है और इससे सिख, जैन, देवसमाजी, यहांतक कि देशाभिमानी और प्रगतिशील आर्य-समाजियोंको भी मनःक्षोभ होता है।

हिन्दू कौन है?—वही जो हिन्दू-धर्म मानता है। बहुत ठीक। पर हिन्दू-धर्म क्या है? वे तत्व और नियम जिन्हें हिन्दू मानते हैं! परन्तु इस तरह इस प्रश्नको हल करना तो एक चक्कर-के पीछे चक्कर लगाना है। इससे कोई निर्णय नहीं हो सकता। इस तरह भटके हुए बहुतसे लोग लौटकर आके कहते हैं, "हिन्दू तो कोई है ही नहीं"! जिस अंगरेजने 'हिन्दूइज्म' शब्द गढ़ा वैसी ही बुद्धि रखनेवाला कोई अंगरेज यदि "इंग्लिशिज्म" शब्द गढ़े और अंगरेज-जातिके अन्दर उस "इंग्लिशिज्म (आंग्ल-धर्मके)" शब्दाधारपर अंगरेजोंके सर्वसामान्य धर्मसिद्धान्तोंकी जांच करने निकले और त्रिमूर्तिके तत्वसे लेकर उपयुक्तताके तत्वज्ञानतक और ज्यू लोगोंसे जैकोबिन लोगोंतक अनेक मतों और पंथोंको देख घबरा जाय और निराश होकर यह कहे कि, "न! अंगरेज तो कोई इस पृथ्वी-तलपर है ही नहीं"! ऐसा कहनेवाला अंगरेज जितना हास्यास्पद होगा उतना ही हास्यास्पद वह हिन्दू भी है जो कहता है कि, "हिन्दू तो कोई मनुष्य-समाज ही

नहीं है!" इस चक्करमें भटकनेवालोंकी कैसी फजीहत होती है और "हिन्दुत्व" और "हिन्दू-धर्म" इन दोनोंका भेद ध्यानमें न रखनेसे कैसी गड़बड़ मचती है यह जिस किसीको देखना हो वह प्रकाशन-पराक्रम करनेवाली नटेशन कंपनीकी "हिन्दुइज्मके लक्षण" नामक अंगरेजी पुस्तक एक बार देख ले।

हिन्दू-धर्मका अर्थ है हिन्दुओंका धर्म; और हिन्दू-शब्द "सिन्धु" से निकला हुआ होनेके कारण उसका मूल अर्थ उन लोगोंसे है जो सिन्धु नदीसे सिन्धु-सागर पर्यन्तके देशमें बसते हैं और इसलिये हिन्दू-धर्मका उसी धर्म या उन्हीं धर्मोंसे मतलब है जो इस देश और इस जातिके सहजात धर्म हैं। यदि इन भिन्न-भिन्न धर्मसिद्धान्तों और आचारोंके आधारभूत कोई समन्वय हम न देख सकें तो हमें यह कहना होगा कि हिन्दू-धर्म कोई सामान्य धर्म नहीं है, बल्कि यह कई ऐसे धर्म-सम्प्रदायोंका समूह है जो संप्रदाय परस्परसे भिन्न अथवा परस्परके विरोधी भी हैं। पर सामान्य हिन्दू-धर्मकी पहचान करनेमें असमर्थ होकर कोई किसी भी हालतमें यह नहीं कह सकता कि हिन्दू तो कोई राष्ट्र या मानव समाज ही नहीं है, न कोई किसी हिन्दू-संप्रदायको यह कहकर चोट पहुंचा सकता है कि अमुक संप्रदाय हिन्दू ही नहीं है।

इस प्रबन्धकी मर्यादा हमें विस्तारसे हिन्दू-धर्मके लक्षणोंकी चर्चा करनेका अवसर नहीं देती। हम ऊपर यह कह चुके हैं कि "हिन्दू-धर्म क्या है?" इसकी जांच तो तब आरम्भ हो सकती

है जब हिन्दुत्वके लक्षण निश्चित करके यह सम्यक् रूपसे जाना जाय कि "हिन्दू कौन है?" और यहां हमें हिन्दुत्वके उन लक्षणोंको देखना है जिनसे हम यह जान सकें कि हिन्दू कौन है; अर्थात् हिन्दू-धर्मके लक्षणोंकी चर्चा इस प्रबंधकी मर्यादाके बाहरका विषय है। यहां उसका उतने ही अंशमें विचार करना होगा जितने अंशमें प्रस्तुत प्रतिपाद्य विषयके साथ उसका संबंध है। हिन्दू-धर्म किसी एक धर्म-सम्प्रदायका नाम नहीं प्रत्युत उन सब संप्रदायोंका समष्टिरूप नाम है जो संप्रदाय अपनेको हिन्दू मानते हैं। परन्तु साधारणतः "हिन्दू-धर्म" इन शब्दोंका प्रयोग उस धर्म-संप्रदायके लिये किया जाता है जिसे हिन्दुओंमेंसे अधिकांश लोग मानते हैं। यह स्वाभाविक है कि किसी धर्म-संप्रदाय, देश या जातिका नाम उस धर्म, देश या जातिके किसी ऐसे विशिष्ट स्वरूपपर रखा जाय जिस स्वरूपको अधिकांश लोग मानते हैं। नित्यके व्यवहारमें इससे बड़ा सुभीता भी होता है। परन्तु इस प्रकारसे कोई नाम सुभीतेका होनेपर भी यदि उससे भ्रम फैलता हो, हानि होती हो तो केवल सुभीतेके ख्यालसे अपनी न्यायान्याय-विवेक-बुद्धिको अन्ध न होने देना चाहिये। हिन्दुओंमें अधिकांश लोग "श्रुतिस्मृतिपुराणोक्त धर्म" अथवा "सनातनधर्म" नामसे जो पुकारा जाता है उस धर्मके माननेवाले हैं। इस धर्मको यदि "वैदिकधर्म" कहें तो इसमें भी कोई आपत्ति नहीं हो सकती। परन्तु, इस बहुजन-समाजके अतिरिक्त ऐसे भी कुछ हिन्दू हैं जो कुछ पुराणोंको सर्वथा या अंशतः नहीं

मानते, कुछ ऐसे हैं जो कुछ स्मृतियोंको नहीं मानते और कुछ ऐसे हैं जो श्रुतियोंतकको नहीं मानते। परन्तु यदि आप बहुजन-समाजके धर्मको ही हिन्दू-धर्म मानते और उसका नाम "कट्टर हिन्दू-धर्म" रखते हैं तो जो अन्य सद्भिन्न धर्म-संप्रदाय हैं उन्हें इस तरह अपना हिन्दुत्वके दायरेसे अन्यायपूर्वक बाहर किया जाना और बहुजन-समाजका हिन्दुत्वका इजारा ले लेना कभी अच्छा नहीं लगता और यह ठीक भी है। अल्प-संख्यक संप्रदायों—का भी कुछ नाम होना चाहिये। पर जब आप कट्टर सनातन-धर्मको ही हिन्दू-धर्म मानेंगे तो इसका यह मतलब होगा कि जो कट्टर सनातनधर्म नहीं है वह हिन्दू-धर्म नहीं है! और इसके बाद फिर यह भी हुआ कि सनातनधर्मसे भिन्न संप्रदायवाले हिन्दू ही नहीं हैं! परन्तु यह निर्णय उन लोगोंको भी असह्य मालूम होता है जो इस वादके पूर्व पक्षको मानकर उस निग्रह-कोटिमें पहुंचते हैं जहां वे ठहरना नहीं चाहते, पर जहांसे निकलना भी नहीं जानते! इस तरहसे हमारे लाखों सिख, जैन, लिंगायत और आर्यसमाजी भाई, यदि उनसे कहा जाय कि अब आप लोग हिन्दू नहीं रहे तो इसे अपना अपमान समझेंगे और इससे उन्हें बड़ा क्रोध होगा। परन्तु इसके साथ ही इन्हीं लोगोंमें कुछ ऐसे भी लोग हैं जो यह मान बैठे हैं कि हिन्दू होना—अपने बापदादोंकी जातिमें बने रहना यही है कि जिन अन्ध-विश्वासकी बातोंको हम नहीं मानते उन्हें मानें अथवा अपनी जातिसे अलग हो जायँ।

इस प्रकार वैमनस्य उत्पन्न होनेका कारण अधिकांशमें यही है कि बहुजन-समाजके धर्मको ही हिन्दू-धर्म कहनेमें भूल हुई है। या तो इस शब्दका अनुचित अर्थ करके हिन्दुओंके सब संप्रदायोंको ही हिन्दू-धर्म कहना चाहिये, या ऐसा न कर सकें तो इस शब्दका व्यवहार ही बन्द कर देना चाहिये। बहुजन-हिन्दू-समाजके धर्मका परंपरासे चला आया हुआ जो "सनातनधर्म" या "श्रुतिस्मृतिपुराणोक्त धर्म" अथवा "वैदिक धर्म" नाम है वह बहुत ठीक है; बाकी जो अन्य संप्रदाय हैं वे अपने नामसे प्रसिद्ध हैं ही, जैसे सिख-धर्म, आर्य-धर्म, जैन-धर्म, बौद्ध-धर्म इत्यादि। जब इन सब धर्मोंका अन्तर्भाव एक ही नाममें करनेकी आवश्यकता होती है तभी उन सबको एक साथ उनके सर्वसामान्य नाम "हिन्दू-धर्म" से अभिहित करना समुचित होता है। ऐसा करनेसे अर्थ भी स्पष्ट होता है, छोटेसे नाममें अभिप्राय भी पूरा व्यक्त हो जाता है और कोई संदिग्धता भी नहीं रह जाती। इससे अल्पसंख्यक लोगोंके मनका सन्देह और बहुसंख्यक लोगोंके चित्तका असन्तोष दोनोंका ही निवारण हो जाता है और वह अवसर मिलता है जब हम सब हिन्दू एक प्राण होकर, एक जाति और एक संस्कृतिकी पुराण-पवित्र वैभवसंपन्न विजयवैजयन्तीके नीचे बन्धु-बन्धुके नाते एक होकर रहते हैं।

अखिल मानव-जातिकी बात छोड़ दें और केवल हिन्दुओंका ही विचार करें तोभी यह स्पष्ट है कि हिन्दू-जातिमेंसे किसी भी समाज के धार्मिक विचारों और संस्कारोंके सबसे प्राचीन ग्रन्थ वेद हैं।

सप्त सिन्धुओंका वैदिक राष्ट्र अनेक उपजातियों और श्रेणियोंमें बँटा हुआ था। उस समय बहुजन-समाजका जो धर्म था, हम उसे सुभीतेके ख्यालसे वैदिक धर्म कहते हैं, परन्तु उस समय भी सप्तसिन्धुओंमें ही एक ऐसा अल्प-संख्यक समाज था जो वैदिक धर्म नहीं मानता था। पण्णी, दास, व्रात्य तथा और भी अनेक समाज ऐसे थे जो अनेक बार वैदिक धर्मको माननेसे इन्कार करते थे और कोई कोई तो वैदिक धर्मके माननेवाले कभी थे ही नहीं। तथापि उन्हें यह चैतन्य था कि जाति और राष्ट्रके बन्धनसे हम सब एक हैं। वैदिक धर्म नामसे पुकारा जानेवाला एक धर्म-संप्रदाय उस समय था। परन्तु वैदिक धर्म और "सिन्धु-धर्म" दोनों चीजें एक नहीं थीं, कारण यदि "सिन्धु-धर्म" इस नामकी सृष्टि उस समय की जाती तो उस नाममें स्वभावतः हो केवल वैदिक धर्म नहीं, प्रत्युत उन सब धर्मोंका अन्तर्भाव होता जो सप्तसिन्धु-प्रदेशमें उस समय विद्यमान थे। इष्टका समावेश और अनिष्टका त्याग करनेकी रीतिसे सिन्धुओंकी जाति बढ़ती-बढ़ती विशाल हिन्दू-जाति हुई और सिन्धुओंका स्थान—सिन्धुस्थान—बढ़ता-बढ़ता हिन्दुओंका स्थान-हिन्दुस्थान बन गया। इस जातिके वैदिक तथा अवैदिक मतोंके प्रवर्तकोंने अनेक अनुभव प्राप्त करके अनेक तत्वोंका आविष्कार करके और अनेक वस्तुओंका ज्ञान संपादन करके निम्नतमसे उच्चतमतक, अणुसे आत्मातक, परमाणुसे पर-ब्रह्मतक संपूर्ण चराचर सृष्टिकी तत्कालसंभव चिकित्सा और

परीक्षा करके विचार-सृष्टिके गुह्यतम रहस्योंका पता लगाकर और परमानंदके उच्चतम नभोमंडलमें विहार करके एक ऐसा समीकरण ढूंढ़ निकाला जिससे सत्यकी खोजमें प्रवृत्त प्रत्येक सत्यान्वेषीके चित्तका समाधान होता है—चाहे कोई एकेश्वरवादी हो, द्वैत विश्वासी या अनीश्वरवादी हो। उस समीकरणका ध्येय सत्य है और उसका साधन आत्मानुभव। वह समीकरण केवल वैदिक नहीं है, केवल अवैदिक भी नहीं है। वह दोनोंका मेल है। वह प्रत्यक्ष धर्मका अनुभव-सिद्ध शास्त्र है और वही हिन्दू-धर्म है। वैदिक, सनातनी, जैन, बौद्ध, सिख—इन सब मतमतान्तरोंका एकीकरण करके जो निर्णायक सत्य तत्व निकलते हैं उन्हीं सत्य तत्वोंका सत्यत्व ही "हिन्दू-धर्म" है। जो जो धर्म-सिद्धान्त और धर्म-संप्रदाय "सप्तसिन्धु" नामसे विख्यात भूमिमें तथा भावी विराट सिन्धुस्थान या हिन्दुस्थानमें उत्पन्न हुए उन सबका अन्तर्भाव हिन्दूधर्मके अन्दर होता है और वे सब हिन्दू-धर्मके प्राणभूत अङ्ग हैं।

इस प्रकार "वैदिक धर्म" या "सनातनधर्म" हिन्दू-धर्मके अन्तर्गत अन्य संप्रदायोंके समान एक संप्रदायमात्र है, फिर उस संप्रदायको माननेवालोंकी संख्या चाहे कितनी ही बड़ी हो। हिन्दू-धर्म-विषयक स्वर्गवासी लोकमान्य पण्डित बाल गंगाधर तिलककी जो

> प्रामाण्य बुद्धिर्वेदेषु साधानानामनेकता।
> उपास्यानामनियम एतद्धर्मस्य लक्षणम्॥

यह व्याख्या है वह इसी "सनातन" हिन्दूधर्मकी है। "चित्र-मय जगत्" में एक ऐसा विद्वत्तापूर्ण लेख लिखकर कि जिसपर उनके प्रचंड पाण्डित्य और प्रगाढ़ ज्ञानकी छाप लगी हुई है, उन्होंने इस "नास्ति" पक्षकी व्याख्याको "अस्ति" पक्षमें रूपान्तरित करनेका प्रयत्न किया था और उसमें उन्होंने यह बता दिया था कि हमारी यह व्याख्या इस समय जिसे साधारणतः हिन्दूधर्म मानते हैं उसीके विषयमें है—हिन्दुत्वके विषयमें नहीं। यही नहीं, बल्कि उसी लेखमें उन्होंने यह भी कह दिया था कि इस व्याख्यामें आर्यसमाजियोंका अन्तर्भाव नहीं किया जा सकता, यद्यपि राष्ट्रीय और जातीय दृष्टिसे आर्यसमाजी भी हिन्दू ही हैं। लोकमान्यकी यह व्याख्या अपने मर्यादित अर्थमें उत्तम है, पर यह व्यापक हिन्दूधर्मकी वास्तविक व्याख्या नहीं हो सकती—हिन्दुत्वकी तो है ही नहीं। वह केवल "श्रुतिस्मृति पुराणोक्त" लक्षणोंसे युक्त जो "सनातनधर्म" है उसीकी व्याख्या है, और यह धर्म-संप्रदाय अन्य सब संप्रदायोंकी अपेक्षा अधिक लोकमान्य होनेके कारण इसीको लोग "हिन्दू-धर्म" कहते हैं। परन्तु तत्वतः यह ठीक नहीं है।

इस प्रकार व्युत्पत्ति और प्रत्यक्ष व्यवहारकी दृष्टिसे और केवल सांप्रदायिक बातोंमें ही "हिन्दू-धर्म" हिन्दुओंका धर्म होनेसे (और धर्म शब्दका अर्थ केवल संप्रदाय हो न होनेसे) हिन्दू-धर्ममें उन सब विशेषताओंका समावेश होता है जो प्रत्येक हिन्दूमें पायी जाती है। हम पहले यह देख चुके कि हिन्दू होनेका सबसे मह-

त्वका लक्षण यह है कि यह भूमि जो सिन्धु-नदीसे सिन्धु-सागर-पर्यन्त फैली हुई है वह उसकी मातृभूमि और पितृभूमि हो--उसके ऋषियों और पूर्वपुरुषोंकी भूमि हो। जिन सब धर्म-संप्रदायोंको हम वैदिक अथवा अवैदिक "हिन्दू-धर्म" कहते हैं वे सब धर्म-संप्रदाय और उनके प्रवर्त्तक तथा उनके द्वारा "सत्तत्व" के दर्शन करनेवाले उनके सब अनुयायी इसी भूमाताकी सन्तान हैं। हिन्दू-धर्मके सब पंथों और संप्रदायोंके लिये 'सिन्धुस्थान'की भूमि दिव्यभूमि है। इसी भूमिमें उन्होंने ईश्वरीय ज्ञान लाभ किया, इसी भूमिके मानवी मनमें वे सब पंथ और संप्रदाय उदित हुए। जिस प्रकार स्वयं पतितपावनी गंगानदी यद्यपि साक्षात् विष्णु-भगवान्‌के पद्-कमलोंसे निस्सरित होती है, तौभी कट्टरसे कट्टर कमठ हिन्दू भी सामान्य विचारमें उसे हिमालयकी ही कन्या मानता है उसी प्रकार यह भूमि जिसके तत्वज्ञानके धार्मिक रूपमें उसे हम "हिन्दू-धर्म" कहते हैं, वह उस तत्वज्ञानकी मातृभू और पितृभू है। हिन्दुत्व-का दूसरा महत्वपूर्ण लक्षण यह है कि हिन्दू अपने हिन्दू माता-पिताका ही वंशज होता है, प्राचीन सिन्धुओं और उनसे निकली हुई हिन्दू-जातिका रक्त अपने अन्दर होनेका दावा करता है। हिन्दू-धर्मके भिन्न-भिन्न धर्म-संप्रदायोंपर भी यह लक्षण पूरे तौर-पर घटता है। कारण, ये सब पंथ और संप्रदाय हिन्दू-ऋषियों और तत्वद्रष्टाओंने ही प्रस्थापित और आविष्कृत किये हैं। और इसलिये ये सब पंथ और संप्रदाय सप्त-सिन्धुओंके तत्व-ज्ञान-तरु-

;ही फल-फूल हैं। हिन्दू-धर्म हिन्दुओंकी नैसर्गिक परिस्थिति गौर विचारप्रणालीका ही विकास नहीं बल्कि हिन्दू-संस्कृतिका गी विकास है। वैदिक कालमें या बौद्ध, जैन आदि संप्रदाग्रोंके उदयकालमें अथवा उससे भी आधुनिक चैतन्य, चक्रधर, बसव, नानक, दयानन्द अथवा राजा राममोहनरायके समयमें जब-जब जो-जो हिन्दू-धर्ममें विचार-क्रांति हुई, उस प्रत्येक क्रांतिके समय ज्ञात हुई परमोच्च आनन्दकी अनुभूति जिस भाषा और जिन लाक्षणिक शब्दोंद्वारा अभिव्यक्त हुई, वह भाषा और वे शब्द, उनकी कथा और उनका तत्वज्ञान, उनके द्वारा विवादित और स्वीकृत सिद्धान्त, इन सबपर हिन्दू-संस्कृतिकी ऐसी वज्रप्राय छाप लगी हुई है कि वह कभी मिट नहीं सकती। हिन्दूधर्मके सब संप्रदाय हिन्दू-संस्कृतिके ही वायुमण्डलमें जनमे हुए हैं और उसीमें उनकी जीवन-रक्षा और वृद्धि हुई है; उसी प्रकार प्रत्येक हिन्दूका धर्म उसकी जन्मभूमिसे इतना अभिन्न प्राण है कि यह भूमि प्रत्येक हिन्दूके लिये केवल पितृभूमि ही नहीं प्रत्युत पुण्यभूमि भी है।

हां, यह भारतभूमि, यह सिन्धुस्थान, यह हमारा देश सिन्धुसे सिन्धुतक जो फैला हुआ है, हमारी पुण्यभूमि ही है, कारण इसी भूमिमें हमारे धर्मप्रवर्त्तक उत्पन्न हुए, इसी भूमिमें वे ऋषि उत्पन्न हुए जिन्हें वेदमंत्रोंके दर्शन हुए। उन वैदिक ऋषियोंसे लेकर दयानन्दतक, जिनसे महावीरतक, बुद्धसे नागसेनतक, नानकसे गोविन्दतक, बंदासे बसवतक, चन्द्र-

धरसे चैतन्यतक, रामदाससे राममोहनतक हमारे सब गुरु और महापुरुष इसी भूमिमें पैदा हुए और इसी भूमिमें पले और फले फूले। इस भूमिकी रजके प्रत्येक कणसे उनके पदस्पर्शकी ध्वनि प्रतिध्वनित होती है। इस भूमिकी सब नदियां पवित्र हैं और उनसे इसकी वनश्री पावन हुई है; कारण, मानवी जीवन, आत्मा और परमात्मा, ब्रह्म और माया—इन गूढ़तम प्रश्नोंका परम विचार हमारे परम पूज्य ऋषियों और आचार्योंने इन्हीं नदियोंके शीतल चन्द्रप्रकाशसे रम्य तटपर अथवा तरुलताओंके कुञ्जमें बैठकर ही किया था। इस भूमिके प्रत्येक गिरि और कन्दरामें कपिल और व्यास, बुद्ध और शङ्कराचार्य, शंकर और रामदासकी स्मृति-समीर बह रही है। कहीं भगीरथने राज्य किया है, कहीं कुरुक्षेत्र विद्यमान है। कहीं रामचन्द्रके वनवासका प्रथम प्रस्थान है, कहीं जानकीके सुवर्णमृग-दर्शनका स्थान है। इस यमुनातीरपर खड़े गोपाल कृष्णने अपनी विश्वविमोहिनी मधुर मुरली बजायी और वहां गोकुलके गोप उसकी ध्वनिपर आनन्दोन्मत्त होकर नृत्य करने लगे। यह बोधिवृक्ष खड़ा है, वहां वह तपोवन है। यहां महावीरने निर्वाण लाभ किया। वहां गुरु नानककी संगत "गगन थाल रविचंद दीपक बने" वाली आरती गा रही है। उस राजा गोपीचंदने राजपाटपर लात मारकर यहीं योगीका वेश लिया और भिक्षा-पात्र हाथमें ले भगिनीके द्वारपर "मैया, भिक्षा दे" की पुकार की। यहां बन्दा बहादुरके पुत्रको बोटी बोटी काटकर उसके

बापके सामने उसका वध किया गया और मृतप्राय पिताने भी हिन्दूधर्मको नहीं छोड़ा, इसलिये उसके मुखमें उसके वीर तनयका रक्ताक्त हृदय क्रूरतासे ठूंसा गया। यहांके प्रत्येक स्थान और पाषाणमें किसी न किसी हुतात्माकी पुण्यकथा संचित हुई है। हे जननी जन्मभूमि! तेरी प्रत्येक रजःकणिका यज्ञभूमि हो गयी है। 'जहां कृष्णसार मिलता है', वहीं नहीं, काश्मीरसे कन्याकुमारीतक समग्र भारतभूमि यज्ञभूमि है, जो ज्ञानयज्ञ अथवा आत्मयज्ञसे पतितपावनी हुई है। इसलिये यह भारतभूमि, यह सिन्धुस्थान प्रत्येक हिन्दूके लिये पितृभू है और पुण्यभू भी।

इसलिये ऐसे मुसलमान और क्रिस्तान जो जबर्दस्ती धर्मच्युत करके परधर्ममें मिलाये गये और इसलिये अन्य हिन्दुओंके साथ जिनकी यही मातृपितृभूमि है, हिन्दू-संस्कृतिके अधिक भागको जो अब भी मानते हैं—जिनकी भाषा, व्यवहार-शास्त्र, रीति-रस्म, लौकिक मनःसंस्कार और इतिहास अनेकांशमें अन्य हिन्दुओंके ही समान हैं—ऐसे मुसलमान और क्रिस्तान—"पुण्यभू" को उपर्युक्त लक्षणमीमांसाके कारण कदापि हिन्दू नहीं माने जा सकते। कारण अन्य हिन्दुओंके समान उनके लिये भी हिन्दुस्थान पितृभूमि है पर पुण्यभूमि नहीं है। उनकी पुण्यभू यहांसे बहुत दूर अरबमें या फिलस्तीनमें है। उनके पुराण और अवतार, उनकी कथाएं और उनके धर्मवीर इस भूमिके जने नहीं हैं। और इसलिये उनके नामों और उनकी आकांक्षाओंमें

परायापनकी गन्ध आती है। उनकी निष्ठा बंटी हुई है। उनमें
कुछ लोग जैसा कि कहा करते हैं वैसी ही यदि उनकी निष्ठा है
तो कोई चारा भी नहीं है—उन्हें अपनी पुण्यभूमि अपनी पितृ
भूमिसे 'गरीयसी' मानना ही होगा और उसीकी अधिक भावना
औ भक्ति करनी होगी। यह बिलकुल स्वाभाविक है। हम इसके
लिये उन्हें बुरा नहीं कहते, न इसपर अश्रुपात ही करते हैं। हम
जो बात है उसीको सामने रख रहे हैं। हिन्दुत्वके लक्षण क्या हैं
यह निश्चित करनेका यहांतक प्रयत्न किया। उससे यह मालूम
हुआ कि बोहरा और ऐसे ही अन्य मुसलमान या क्रिस्तानोंमें
हिन्दुत्वके और सब लक्षण हैं पर एक लक्षण नहीं है—कि वे
हिन्दुस्थानको अपनी पुण्यभू नहीं मानते।

यहां यह प्रश्न नहीं है कि कौन धर्म अच्छा है और किस
धर्मको मानना चाहिये और न यहां परमात्मा, आत्मा और जीवा-
त्माके संबंधमें ही कोई नया सिद्धान्त प्रतिपादित करना है
कारण, हमारा अन्तःकरणवृत्तिसे ही यह प्रामाणिक विश्वास
है कि हिन्दू तत्वज्ञान—हम किसी संप्रदाय विशेषकी बात नहीं
कहते—हिन्दू तत्वज्ञान—उस पराकाष्ठाको पहुंचा हुआ है कि
मानवी कल्पनाशक्तिमें अब कोई ऐसी बात नहीं रह गयी है कि
उससे अज्ञेयके संबंधमें तो क्या, अज्ञातके संबंधमें भी कोई नयी
कल्पना निकल सके अथवा "तत्" और "त्वम्" की कोई नयी
मीमांसा हो सके। आप कौन हैं? एकेश्वरवादी, जगदीश्वरवादी
निरीश्वरवादी, नास्तिक्यवादी; कौन हैं? जो कोई हों, यह

आपके लिये पूरा अवसर और अवकाश है, जिसमें हे आत्मन्! सब मन्दिरोंके इस मन्दिरमें आकर जो किसी वैयक्तिक नींवपर नहीं बल्कि अटल, अचल, व्यापक सत्यकी नींवपर उठा हुआ है, तुम चाहे जितने ऊंचे उडकर ऊंचेसे ऊंचे और परमसुखधामको प्राप्त कर सकते हो। कहां अपनी छोटीसी सुराही लेकर जलके लिये कुओंकी तलाशमें भटक रहे हो, जब खड़े हो स्फटिकसे स्वच्छ सलिलकी स्रोतस्वती पतितपावनी महानदी गङ्गाके तटपर! क्या तुम्हारी नसोंमें प्रवाहित होनेवाला हमारे तुम्हारे पूर्वजोंका रक्त तुम्हें उन प्रिय दृश्यों और प्रेमबंधनोंका स्मरण नहीं कराता, जिन्हें काटकर जबर्दस्ती खड्गकी धारपर तुम हमसे अलग किये गये? आओ भाई, अपने भाई-बहनोंमें लौट आओ, देखो, अपने बिछुड़े हुए भाईका स्वागत करनेके लिये अपने हृदयका कपाट खोलकर ये अपनी आलिङ्गनोत्सुक बाहें फैलाये हुए हैं। कहां तुम्हें उपासना करनेकी इतनी स्वाधीनता मिलेगी जितनी इस पुण्यभूमिमें, जहां महाकालके मन्दिरकी सीढ़ियोंपर खड़ा होकर चार्वाक भी नास्तिक-दर्शनका उपदेश दे सकता है? कहां इससे अधिक समाज-संघटनकी स्वाधीनता पाओगे जितनी इस हिन्दू-समाजमें, जहां विहारके पाटलीपुत्रसे काशीके पण्डितोंतक, सन्थालोंसे राजपूतानेके राजप्रसादोंतक, सबके अपने अपने विशिष्ट समाज हैं—सब अपने अपने विशिष्ट समाज बना सकते और संघटित कर सकते हैं। सच है—

यद्देहास्ति न सर्वत्र यन्नेहास्ति न कुत्र चित्।

यहां जो है वह सब जगह नहीं मिलेगा; यहां जो नहीं है वह कहीं भी न मिलेगा। संसारमें जो कुछ है, वह यहां मौजूद है। तुम जो जाति, रक्त, संस्कृति और राष्ट्रीयताके बन्धनोंसे हिन्दू ही हो और जिसे हिंसाके हाथने ही अपने पितृ-गृहसे जबर्दस्ती खींच लिया, तुम्हें यही करना है कि अपनी अनन्य भक्ति अपनी इस माताको अर्पण करो और इसे केवल पितृ-भू नहीं, पुण्यभूमि मानकर पूजो और इस तरह फिरसे हिन्दूसंघमें आ जाओ। हिन्दू जाति अत्यन्त प्रसन्न चित्तसे तुम्हारा स्वागत करेगी।

बोहरा, खोजा, मेमन तथा अन्य मुसलमानों और ऐसे ही क्रिस्तानोंके लिये यही रास्ता खुला है और यह केवल उनकी मर्जीपर है कि वे इसे स्वीकार करें या न करें। परन्तु जबतक वे इस मार्गपर नहीं हैं तबतक हम उन्हें हिन्दू नहीं कह सकते। यहां यह बात ध्यानमें रखनी चाहिये कि हम हिन्दुत्वके लक्षणोंकी जांच कर रहे हैं और इसलिये किसी पक्ष या पूर्वग्रहके अनुकूल अर्थ निकालनेके लिये विवेच्य विषयके विवेचनमें खींच-तान करना केवल अन्याय होगा।

तात्पर्य, हिन्दू वही है जो सिन्धु नदीसे सिन्धु-समुद्र पर्यंत विस्तृत इस देशको अपनी पितृ-भू मानता है; जो रक्त-संबंधसे उस जातिका वंशधर है जिसका प्रथम उद्गम वैदिक सप्त-सिन्धुओंमें हुआ और जो पीछे बराबर आगे बढ़ती अन्तर्भूतको पचाती और उसे महनीय रूप देती हिन्दू-जातिके नामसे विख्यात हुई; जो उत्तराधिकार सम्बन्धसे उसी जातिकी उस संस्कृतिको

अपनी संस्कृति मानता है जो संस्कृति संस्कृत भाषामें संचित और जातिके इतिहास, साहित्य, कला, धर्मशास्त्र, व्यवहारशास्त्र, रीति-नीति, विधि-संस्कार, पर्व और त्योहार—इनके द्वारा अभिव्यक्त हुई है; और जो इन सब बातोंके साथ इस देशको अपनी पुण्य-भू, अपने अवतारों और ऋषियोंकी, अपने महापुरुषों और आचार्योंकी निवास-भूमि तथा सदाचार और तीर्थयात्राकी भूमि मानता है। हिन्दुत्वके ये लक्षण हैं—एक राष्ट्र, एक जाति, और एक संस्कृति। इन सब लक्षणोंका अन्तर्भाव करके संक्षेपमें यों कहा जा सकता है कि हिन्दू वह है जो सिन्धुस्थानको केवल पितृभू नहीं, पुण्य-भू भी मानता है। हिन्दुत्वके प्रथम दो लक्षण-राष्ट्र और जाति—"पितृ-भू" शब्दमें आ जाते हैं, और तीसरा लक्षण—एक संस्कृति—"पुण्य-भू" शब्दसे मुख्यतः प्रकट होता है, क्योंकि संस्कृतिमें सब संस्कार आ जाते हैं और संस्कृति ही किसी भूमिको पुण्य-भूमि बनाती है। यह परिभाषा और भी संक्षिप्त निम्नलिखित अनुष्टुपमें की जा सकती है—

आसिन्धु सिन्धुपर्यन्ता यस्य भारतभूमिका।
पितृ-भूः पुण्य-भूश्चैव स वै हिन्दुरितिस्मृतः॥

(७)

परिभाषाकी जांच

अबतक हिन्दुत्वका जो स्थूल विवेचन किया गया उससे "हिन्दुत्व" के मुख्य लक्षणोंका बोध करानेवाली एक काम चलाने लायक परिभाषा तैयार हो गयी। अब यह सर्वसामान्य परिभाषा किस प्रकार सर्वत्र घटती है यह देखना बाकी है। यह काम कुछ खास उदाहरण लेकर और जिन उदाहरणोंके कारण यह परिभाषा करनेकी आवश्यकता पड़ी ऐसे ही उदाहरण लेकर किया जा सकता है। इस परिभाषाको निश्चित करते हुए, हमने इस बातकी सावधानी रखी है कि इसमें अतिव्याप्तिका दोष न आने पावे। अब कुछ खास उदाहरण लेकर उनपर इस परिभाषाको हम यथार्थमें घटा सके तो यह निश्चय हो जायगा कि इसमें जैसे अति-व्याप्तिका दोष नहीं है, वैसे ही अव्याप्तिका भी दोष नहीं है।

हिन्दुओंमें जो देशिक विभाग हुए हैं वे इस परिभाषासे पूण सुसंगत हैं, यह उन विभागोंको देखनेके साथ ही प्रतात हो जायगा। हमारी परिभाषाका मूलतत्व "आसिन्धु सिन्धु-पर्यन्ता" भूमि है। हमलोगोंमेंसे बहुतसे लोग सिन्धु नदीके उस पारकी भूमिमें वास करते हैं। तथापि जब किसी नदीके तटका

उल्लेख किया जाता है तब उसमें दोनों ही तट आ जाते हैं और इसलिये सिन्धु नदीके पश्चिम तटका सारा प्रदेश निसर्गतः ही "सिन्धुस्थान" का ही अंश है और इसलिये वह हमारी परिभाषाके अन्दर आ जाता है। सिंधु नदीके इस पश्चिम तटप्रदेशपर जो लोग रहते हैं वे निःसन्देह प्राचीन सिंधुओंके वंशज हैं और उन्होंने आजतक अपना और अपनी भूमिका प्राचीन नाम नहीं बदला है—वे आज भी सहस्रों वर्ष पूर्वकी तरह "सिंधुदेश" की संतान "सिन्धी" ही कहलाते हैं। दूसरी बात यह है कि मुख्य भूमिके आस-पासकी भूमि भी मुख्य भूमिके नामसे ही पुकारी जाती है और तीसरी बात यह है कि सिंधुके उस पार रहनेवाले ये हिन्दू परम्परासे इस हिन्दुस्थानको ही अपनी पितृ-भू और पुण्य-भू मानते आये हैं। उन्होंने कभी अपने रहनेके छोटेसे प्रदेशको ही "पितृ-भू" और "पुण्य-भू" मान बैठनेकी मातृ-घातक कल्पना करनेका पाप नहीं किया। प्रत्युत हमारी जो काशी, कैलास और गंगोत्री है वही काशी, कैलास और गंगोत्री उनकी भी है। वैदिक कालसे ही वे भारतवर्षके एक प्रधान अंग हैं। रामायण और महाभारतमें "सिन्धु शिविसौवीरों" का उल्लेख है और वे महान् हिन्दू जातीय संघ और राष्ट्रके अंग ही हैं। वे हमारे राष्ट्र, जाति और संस्कृतिके ही हैं; इसलिये वे हिन्दू हैं और हमारी परिभाषाके अन्दर आते हैं।

परन्तु यदि कोई इस बातको न भी माने कि किसी नदीका अपनी हदके अन्दर होना उसके दोनों तटोंका उस सीमाके अंदर

होना है तो भी उससे हमारी परिभाषामें कोई दोष नहीं आता; और, और भी कुछ कारण हैं जिनसे यह परिभाषा हमारे सिन्धी भाइयोंपर पूरे तौरपर घटती है। सिंधु नदीके उस पार रहनेवाले इन सिन्धी भाइयोंके अतिरिक्त, हमारे और भी बहुतसे हिन्दू भाई हैं जो संसारके भिन्न भिन्न भागोंमें बसे हुए हैं। कोई समय आ सकता है जब हमारे ये उपनिवेशवासी हिन्दू जो आज भी उन उन उपनिवेशोंमें संख्या, व्यापार, योग्यता और बुद्धिमत्तामें बड़े माने जाते हैं, किसी किसी प्रदेशके मालिक बन सकते हैं और अपना स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर सकते हैं। परन्तु हिन्दुस्थानके बाहर किसी अन्य देशमें जा बसनेसे ही कोई हिन्दू क्या अहिन्दू हो जायगा? कदापि नहीं; कारण, हिन्दुत्वका प्रथम लक्षण यह नहीं है कि वह हिन्दुस्थानके बाहर रहनेवाला मनुष्य न हो, बल्कि यह है कि वह और उसके वंशज जहां कहीं भी हों हिन्दुस्थान-को अपनी पितृ-भूमि मानें। और यह केवल मानने न मानने-का ही प्रश्न नहीं है। जिस किसीके पूर्वज हिन्दुस्थानसे जाकर कहीं बाहर बसे होंगे उसको यह मानना ही पड़ेगा कि हमारी पितृभूमि हिन्दुस्थान है। इस तरह हिन्दुत्वकी इस परिभाषामें हिन्दू-जातिके चारों ओर फैलनेकी पूरी गुंजायश है। हमारे जो लोग भिन्न भिन्न उपनिवेशोंमें बसे हुए हैं वे अपनी सारी सामर्थ्य लगाकर 'भारत" को "महाभारत" या "हिंदुस्थान" को "विराट हिन्दुस्थान" निर्माण करनेका उद्योग बराबर करते रहें और हिन्दू-संस्कृतिमें जो कुछ उत्तम है उसे मानव-जातिके उद्धारमें

लगाते रहें, एक ध्रुवसे दूसरे ध्रुवतक इस समग्र पृथ्वीके लोगोंको अपने सद्गुणोंसे सम्पन्न करें और अन्य देशोंमें जहां जो कुछ उत्तम हो उसे लेकर उससे अपने देशको भी समृद्ध करें। हिन्दुत्व हिमालयके गरुड़ोंके पँख नहीं काटता प्रत्युत उनकी उड़ानकी शक्तिको बढ़ाता है। जबतक, हे हिन्दू भाइयो, तुम अपने हिंदुस्थान देशको अपनी पितृ-भू और पुण्यभू मानते हो और हिन्दू-जातिकी संस्कृति और हिंदू-जातिके रक्तका अभिमान तुम्हारे अन्दर है, तबतक आगे बढ़े चलो, संसारमें अपने उपनिवेश कायम किये चलो। हिंदुत्वकी भौगोलिक चतुःसीमा पृथ्वीकी चतुःसीमा है।

अब हमारी परिभाषामें जाति-संबंधी जो लक्षण है, हम नहीं समझते कि कोई भी उसपर कोई आपत्ति कर सकता है। जिस प्रकार इंग्लैंडमें इबेरियन, केल्ट, आंग्ल, सैक्सन, डेन आदि भिन्न भिन्न लोग, परस्पर विवाह-संबंधी जातीय प्रतिबंधोंके रहते हुए भी, एक जाति बन गये हैं; उसी प्रकार प्राचीन आर्य, कोलार, द्राविड़ तथा अन्य लोगोंमें परस्पर-विवाह-संबंधी जातीय प्रतिबंधोंके रहते हुए भी वे एक जाति हुए हैं और अब वे प्रतिबन्ध प्रतिबंध नहीं माने जा सकते। हम पिछले परिच्छेदोंमें इस विषयका विस्तारके साथ प्रतिपादन करके यह दिखला चुके हैं कि विवाहके जिन प्रतिलोम और अनुलोम प्रकारोंको हमारे धर्मशास्त्रमें स्थान मिला हुआ है उन्हींसे यह प्रमाणित हो जाता है कि उसी समय ये भिन्न भिन्न वंश एक दूसरेमें इस हद्दतक मिल

गये थे कि संपूर्ण राष्ट्र-शरीरमें एक ही रक्त प्रवाहित होता था। जहां रूढ़िने विरोध किया वहां स्वयं प्रकृतिने उन बांधोंको तोड़ डाला। आर्योंमें अकेले भीमसेन ही नहीं हुए जिन्होंने हिडिंबासे प्रयण किया हो। भील और संथाल जातिकी दस-बीस लड़कियोंमेंसे भी यदि किसी लड़कीको उठाकर किसी कन्यापाठशालामें छोड़ दें तो उसकी आकृति या नैतिक संस्कारसे कोई यह पता लगाना चाहे कि यह किस जातिकी है तो वह नहीं लगा सकेगा। आर्य, कोलार, द्राविड़ आदि वंशोंके संमिश्रणसे जो जाति उत्पन्न हुई वह ठीक ही है कि आर्य, कोलार या द्राविड़ न कहलाकर, हिंदू-जाति कहलाती है—अर्थात् वह जाति जो एक हो मातृ-भूमिकी संतति और एक ही पुण्यभूकी उपासक है। इसलिये संथाल, धोवर, भील, पंचम, नमःशूद्र और ऐसी अन्य सब जातियां हिंदू ही मानी जाती हैं। यह हिंदुस्थान जितना आर्योंके पूर्वपुरुषोंका देश है उससे यदि अधिक नहीं तो कमसे कम उतना ही वह उनका भी है। उनमें वही हिंदू-रक्त है, उनमें वही हिन्दू-संस्कृति है। उनमें कुछ लोग ऐसे भी हैं जो अभी किसी कट्टर पुराणप्रिय हिंदू-सम्प्रदायके पूर्ण प्रभावके अन्दर नहीं आये हैं तौभी वे ऐसे देवताओं और साधु-सन्तोंका नाम लेते हैं, ऐसे ही "धर्म" का पालन करते हैं जो देवता, साधु और धर्म-संप्रदाय केवल इसी देशसे सम्बद्ध हैं और इसलिये यह भूमि उनकी केवल पितृभू नहीं, पुण्यभू भी है।

हिन्दुत्वका जो सांस्कृतिक पहलू है उसपर भी कोई आपत्ति

हीं हो सकती; पर "हिन्दुत्व" और "हिन्दू-धर्म" इन दोनोंको एक ही वस्तु मानकर लोग भ्रममें पड़ जाते हैं। हम इन दोनों कल्पनाओंके बीच जो भेद है उसे स्पष्ट रूपसे दिखला चुके हैं और यह भी बतला चुके हैं कि हिन्दूधर्मको 'सनातनधर्म' कहना या हिन्दुत्वको हिन्दूधर्म कहना ये—दोनों बातें ठीक नहीं हैं। यह जो दोहरी गलती होती है कि हिन्दुत्वको हिन्दूधर्म समझा जाता है और हिन्दुत्व तथा हिन्दूधर्मसे सनातनधर्म संप्रदाय माना जाता है, इससे सनातनेतर धर्मसंप्रदाय चिढ़ते हैं और कुछ लोग इस भ्रमका भण्डा फोड़नके बदले एक दूसरी, और वह भी बड़ी भारी, गलती करते हैं जो अपने हिन्दू होनेका दावा ही उठा लेते हैं। हमें आशा है कि हमारी हिन्दुत्वकी इस परिभाषासे इस तरहकी गलती करनेकी किसीके लिये भी गुञ्जा-यश न रहेगी। उसी प्रकार यह परिभाषा सत्यके सुदृढ़ आधार-पर खड़ी होनेसे इसे अखिल हिन्दू-समाजके समझदार लोग मान लेंगे, परन्तु अबतक इस प्रश्नके सामान्य विवेचनमें हम कोई किसी समाजका उदाहरण लेकर जांच न कर सके सो अब करते हैं। सबसे पहले अपने सिखसंघका उदाहरण लीजिये। कोई भी सिख इतना मूर्ख न होगा जो सिन्धुस्थानको—आसिंधु सिंधुपर्यंता भारतभूको अपनी पितृ-भूमि न माने—जहां वैदिक कालसे अबतक उसके पूर्वपुरुष जीये, जहां रहकर उन्होंने भजन किये और जहां उनकी समाधि लगी। दूसरी बात, उनके शरीरमें भी उतना ही हिन्दूरक्त है जितना मद्रास या बंगालके

किसी हिन्दूमें। महाराष्ट्र और बंगालके हिन्दुओंमें आर्योंके रक्तके साथ वहां बसनेवाली जातियोंका भी रक्त मिला हुआ है। परन्तु सिख तो अभिमानके साथ यह दावा कर सकते हैं कि हम तो उन्हीं प्राचीन सिन्धुओंके ही प्रत्यक्ष वंशज हैं, और हिन्दू-जीवनकी यह गंगा नीचे आकर बहने लगनेके पूर्व ही उस गंगाके उद्गम स्थानमें हमारा जन्म हुआ है। तीसरी बात, हिन्दू संस्कृतिकी संपत्ति बढ़ानेमें उनका भी हाथ है और इसलिये हिन्दू-संस्कृतिके हमारी तरह वे भी अधिकारी हैं। कारण सरस्वती विद्या और कलाकी अधिष्ठात्री देवी मानी जानेके पूर्व पञ्जाबमें एक नदी थी। आज भी हिन्दुस्थानभरमें लाखों-करोड़ों हिन्दू वही स्तुति गाते हैं जो, हे सिख भाइयों, तुम्हारे पूर्वज 'सिन्धू' उस नदीके किनारे जहां हमारी संस्कृति और सभ्यताका बीज बोया गया, गाते थे और गाकर अपनी कृतज्ञता ज्ञापन करते थे। "अंबितमे नदीतमे। देवितमे सरस्वति!" यह सस्वर मंत्र-पाठ आज भी होता है। वेद जैसे हमारे हैं वैसे ही सिखोंके भी हैं। वे वेदोंको अपौरुषेय न मानते हों जैसे हम मानते हैं, यह बात दूसरी है। पर वेदोंमें भी प्रकृतिकी शक्तियोंको स्वकार्य-साधनमें लगानेके मनुष्यके प्रथम प्रचंड प्रयत्नका वर्णन है—स्वर्गीय सुधाको अन्धकारमें कैद कर रखनेवाले और इस तरह आत्मज्योतिकी किरणोंका प्रकाश मानवी मनसे रोककर चैतन्यको अचेतन बना रखनेवाले अज्ञानके साथ मनुष्यके तुमुल संग्रामका वर्णन है; इस नाते वेद उनके लिये भी पूज्य हैं। सिखोंका इतिहास भी, अन्य सब हिन्दू-समाजोंके समान, यथार्थमें वेदोंसे ही आरंभ

होकर, अयोध्याके राजमहलों और लंकाकी समर-भूमिसे होता हुआ लहुसे लाहोरकी नींव पड़ती देखता और कपिलवस्तुसे प्रस्थान करते सिद्धार्थके दर्शन करता, त्रितापदग्ध मनुष्यको मुक्तिका उपाय ढूंढनेके लिये गुफाओंमें जा छिपता है। हमारे साथ सिख भी पृथ्वीराजकी हारपर अश्रुपात करते हैं और हिन्दूके नाते हिन्दुओंके दुर्भाग्य और दुःखोंका अनुभव करते हैं। उदासी, निर्मले, गहनगंभीर और सिन्धो सिख संस्कृत भाषाको केवल अपने पूर्वजोंकी भाषा ही नहीं मानते प्रत्युत उसे अपने देशकी पवित्र भाषा—देववाणी मानते हैं। अन्य सिखोंको भी इसे अपने पूर्वजोंकी भाषा और उन गुरुमुखी और पञ्जाबीकी जननी मानकर पूजना ही पड़ता है जो गुरुमुखी और पञ्जाबी अभी अपनी बाल्यावस्थामें हैं और जो जननीके स्तनोंसे ही अपने जीवनका पोषक रस पान करती हैं। अन्तिम बात यह है कि यह "आसिंधु सिंधु-पर्यंता" भूमि न केवल उनकी पितृभू है, बल्कि पुण्यभू भी है। गुरु नानक और गुरु गोविन्द, श्री बंदा और रामसिंह हिन्दुस्थानमें ही पैदा हुए और पले; हिन्दुस्थानके ही सरोवर अमृतसर और मुक्तसर हैं, हिन्दुस्थानकी ही भूमि गुरुद्वार और गुरुगृह है। सचमुच ही यदि किसी जातिके हिन्दू होनेमें कुछ भी कोर-कसर नहीं है तो वह सिख-जाति ही है। कारण, ये सिख सप्तसिन्धुके तटपर रहनेवाले आदि निवासी हैं और "सिन्धु" अथवा "हिन्दु" के प्रत्यक्ष वंशज हैं। आज जो सिख है वह कल हिन्दू था और आजका हिन्दू कलका सिख हो सकता है। भेषमें,

रहन-सहनमें, नित्यके जीवनकी किसी बातमें कोई परिवर्तन हो जानेसे ही किसीका रक्त या बीज नहीं बदल जाता न इतिहास ही मिट सकता है।

लाखों सिखोंका हिन्दुत्व स्वयंसिद्ध ही है। सहजधारी, उदासी, निर्मले, गहनगंभीर और सिंधी सिखोंको, जाति और राष्ट्रके विचारसे, अपने हिन्दू होनेका पूर्ण अभिमान है। उनके गुरु जब हिन्दू-सन्तान थे तब उन्हें कोई अहिन्दू कहकर उनका क्रोध-भाजन हुए बिना कैसे रह सकता है? गुरुग्रन्थको पूज्य मानकर सनातनी भी पढ़ते हैं और सिख भी। दोनोंके पर्व और त्योहार एकसे हैं। "तत्खालसा" पन्थके सिख भी अधिकांशमें अपनेको हिन्दू ही मानते हैं और हिन्दुओंमें हिन्दुओंकी तरह ही रहते हैं। उनसे जाकर यदि कोई कहे कि आप लोग हिन्दू नहीं हैं तो वे चकित स्तम्भित हो जायंगे—उनके हृदयको बड़ा भारी धक्का लगेगा। हमारी जातीय एकता इतनी संशय-रहित, प्रत्यक्ष और पूर्ण है कि सिख और सनातनियोंमें विवाह-सम्बन्ध भी होते हैं।

अब यह बात है कि कभी कभी कुछ सिख-नेता यह कहा करते हैं कि हम हिन्दू नहीं हैं। इसका कारण क्या है? कारण यह है कि "हिन्दू-धर्म" का अर्थ गलतीसे "सनातनधर्म" माना जाने लगा। यदि इन शब्दोंके अर्थके सम्बन्धमें ऐसी गड़बड़ न होती तो उनकी यह आवाज भी किसीको न सुनायी देती कि "हम हिन्दू नहीं हैं"। "हिन्दू-धर्म" के अर्थके सम्बन्धमें भ्रम और

उसके अयथार्थ प्रयोगकी इस गड़बड़ीसे यह आत्मघात करनेवाली प्रवृत्ति उत्पन्न हुई जो समय समयपर भाई भाईमें वैर कराती है। हम यह स्पष्ट रूपसे दिखला चुके हैं कि हिन्दुत्वको कसौटी कोई धार्मिक कल्पना नहीं है। यहां हम फिर वही बात कहते हैं कि सिख यदि चाहें तो "सनातनधर्म" की उन सब बातोंको, यहांतक कि वेदोंके अपौरुषेयत्वको भी अन्धविश्वास कहकर अस्वीकार कर सकते हैं। ऐसा करनेसे वे सनातनी नहीं रहेंगे, पर तौभी हिन्दुत्वपर उनका पूरा अधिकार रहेगा। हिन्दुत्वकी हमारी जो परिभाषा है उसी परिभाषाके अनुसार सिख हिन्दू हैं, किसी धार्मिक कल्पनाके अनुसार नहीं। सम्प्रदायतः वे सिख हैं, जैसे जैन जैन हैं, लिंगायत लिंगायत हैं या वैष्णव वैष्णव हैं। पर जाति, राष्ट्र और संस्कृतिके नाते ये सब एक अखण्ड जाति और राष्ट्र हैं और सनातनसे ही ये सब हिन्दू कहलाते चले आते हैं। यही हिन्दू नाम ही इनके लिये यथार्थ है। और कोई दूसरा नाम हमारी जातीय एकताको अभिव्यक्त नहीं कर सकता। भारतीय शब्दसे भी वह संपूर्ण भाव नहीं प्रकट होता, यह हम पिछले परिच्छेदोंमें दिखला ही चुके हैं। भारतीय शब्द इससे अधिक व्यापक है, उससे भारत या हिन्दुस्थानमें रहनेवाले व्यक्तिमात्रका बोध होता है—हम सब हिन्दुओंकी जातीय एकताका नहीं। हम सिख हैं, हिन्दू हैं और भारतीय हैं। हम एक साथ तीनों हैं, अलग अलग कुछ भी नहीं।

हमारे कुछ सिख भाई जो अपनेको हिन्दुओंसे पृथक् गिनाने

लगे, उसका एक कारण तो यह हुआ कि उन्हें यह भय था कि अपनेको हिन्दू कहनेसे हम सनातनी समझे जायंगे; इसके साथ ही एक और दूसरा कारण भी हुआ और वह कारण राजनीतिक है। यहां "विशेष प्रतिनिधित्व" के गुण-दोषोंकी चर्चा करना उचित न होगा। सिख अपने समाजके विशिष्ट अधिकारोंकी रक्षा चाहते थे, और यदि मुसलमान अपने लिये विशिष्ट और सांप्रदायिक प्रतिनिधित्वका अधिकार पा सकते हैं तो कोई कारण नहीं है कि भारतवर्षके अन्य अल्प-संख्यक समाज वैसा ही अधिकार न मांगें। परन्तु यह ज़रूर है कि सिखोंको अपनी मांगकी पुष्टिके लिये ऐसी निराधार और आत्मघात करनेवाली दलीलका सहारा न लेना चाहिये था कि हम हिन्दू नहीं हैं। सिख अपने सांप्रदायिक स्वार्थोंकी रक्षाके लिये एक महत् अल्पसंख्यक सामाजके नाते विशिष्ट सांप्रदायिक प्रतिनिधित्व मांग सकते थे और उसमें उन्हें यश भी मिलता, जैसा कि अब्राह्मणों और अन्य समाजोंको मिला है। इसके लिये वे हिन्दुत्वका अपना जन्मसिद्ध अधिकार क्यों छोड़ें? हमारे सिख भाइयोंका समाज मुसल्मानोंके समाजसे किसी प्रकारसे भी कम महत्वका नहीं है—हम हिन्दुओंके लिये तो हिन्दुस्थानके किसी भी अहिन्दू समाजसे यह समाज अधिक महत्वका है। विशिष्ट और सांप्रदायिक प्रतिनिधित्वसे होनेवाली हानि उतनी बड़ी नहीं होती जितनी जातीय अलगावकी मनोभावनासे होती है। सिख, जैन, लिंगायत, अब्राह्मण और ब्राह्मण भी यदि चाहें तो

अपने अपने विशिष्ट और सांप्रदायिक प्रतिनिधित्वके लिये लड़ें, यदि वे समझते हैं कि इसके बिना उनके समाजकी उन्नति नहीं हो सकती। कारण, इन समाजोंकी उन्नति ही तो समग्र हिन्दू-जातिकी उन्नति है। प्राचीन कालमें भी हमारे चार वर्णोंको राज-सभा और स्थानिक संस्थाओंमें संप्रदायमूलक पृथक् प्रतिनिधित्व प्राप्त था। सब वर्ण यह विशेष अधिकार भोगते थे, पर इसके लिये उन्हें हिन्दुत्वसे पृथक् होनेकी आवश्यकता न होती थी। सिख अपने धर्म-संप्रदायके नाते सिख बने रहें; पर जाति, राष्ट्र और संस्कृतिके नाते वे हिन्दू हैं और उन्हें हिन्दू ही कहलाना चाहिये।

जिन वीरोंने सैकड़ोंकी संख्यामें घातकके खड्गपर अपने सिर कटा दिये पर अपने गुरुका वचन नहीं टाला—"धर्म हेत शाका जिन किया। सिर दिया पर सिरड़ न दिया!" क्या वे अपना बीज भुला देंगे, क्या अपने पूवजोंको ही धिक्कारेंगे और एक छोटीसी चीजके लिये अपना जन्म-सिद्ध अधिकार बेंच देंगे? ईश्वर ऐसा न करे! हिन्दू-जातिमें जो अल्पसंख्यक समाज हैं वे इस बातको ध्यानमें रखें कि संघमें शक्ति है तो हिन्दुत्व ही वह दृढ़तम और प्रियतम बन्धन है जिससे हमारी जातिका वास्तविक, चिरस्थायी और शक्तिशाली संघ बन सकता है। आप यह समझते होंगे कि अभी तो अलग रहनेमें ही फायदा है, पर इससे इस प्राचीन जाति और सभ्यताकी अशेष हानि होगी—विशेषकर आपकी हानि होगी। आपका हित आपके अन्य हिन्दू भाइयोंके हितमें

ऐसा मिला हुआ है कि उसे उससे अलग नहीं कर सकते। अतीतकालकी तरह भविष्यकालमें भी जहां कहीं विदेशियोंका हिन्दू सभ्यतापर आक्रमण होगा, वहांपर वह आपके लिये भी उतना ही प्राणान्तक होगा जितना अन्य किसी भी हिन्दू-समाजके लिये। अतीतकालकी तरह भविष्यकालमें भी जब कभी यह समग्र हिन्दू-जाति किसी शिवाजी या रणजीतके नायकत्वमें, रामचन्द्र या युधिष्ठिरके नायकत्वमें, अथवा किसी अशोक या अमोघवर्षके नायकत्वमें पूर्ण चैतन्य लाभ कर, विक्रम और गौरवके शिखरपर आरोहण करेगी तब उसकी प्रभा आपपर भी उतनी ही पड़ेगी जितनी हिन्दू-जातिके अन्य किसी भी समाजपर। इसलिये, प्यारे भाइयो, छोटी छोटी बातोंके लोभमें पड़कर या इतिहासका विपरीत अर्थ ग्रहण कर हतबुद्धि मत हो। एक बार एक ग्रन्थीसे मेरी भेंट हुई। था तो ग्रन्थी, पर एक ब्राह्मणके घरपर डाका डालनेके अपराधमें इसे सजा हुई थी। उस ब्राह्मणका यह कर्जदार था और इसने उसका खून किया था। इस ग्रन्थीने मुझसे कहा कि सिख हिन्दू नहीं हैं और किसी ब्राह्मणको मारनेमें कोई पाप नहीं है; क्योंकि गुरु गोविन्दसिंहके बेटोंके साथ एक ब्राह्मण रसोइयेने दगा की थी। सौभाग्यवश वहां एक और सिख महाशय थे। ये भी ग्रन्थी थे और यथार्थमें ग्रन्थी थे। बड़े बड़े सिख विद्वान इन्हें मानते थे। इन्होंने उस ग्रन्थीकी बातका खंडन किया। मतिदास आदि ब्राह्मणोंने गुरु गोविन्दसिंहको आश्रय दिया था और अनेक ब्राह्मणोंने सिखोंकी

सहायता करते करते अपने प्राण अर्पण किये थे इत्यादि उदाहरण देकर उन्होंने इसका मुंह बन्द किया। शिवाजी महाराजके साथ उनके अपने लोगोंने और उनके पोते शाहू महाराजके साथ पिसाल जो हिन्दू था उसने दगा की। पर इससे क्या शिवाजीने अपनी जातिको छोड़ दिया या हिन्दुत्वसे नाता तोड़ा? वीर बंदाके साथ कितने ही सिखोंने विश्वासघात किया। उसी तरह अंगरेजोंके साथ खालसाका जो अन्तिम युद्ध हुआ उसमें भी अनेक सिखोंने अपने पन्थके साथ दगा की। स्वयं गुरु गोविन्दसिंहको उस घमासान युद्धमें अकेला छोड़कर अनेक सिख भाग गये और उसीसे उस नराधम "ब्राह्मण" को गुरुके बेटोंके साथ विश्वासघात करनेका मौका मिला। परन्तु इस ब्राह्मणके पापके कारण हम लोग हिन्दुत्वसे ही नाता तोड़ें तो उन विश्वासघातक सिखोंके कारण सिख-पन्थसे भी नाता तोड़ना पड़ेगा।

हिन्दू-जातिके अल्पसंख्यक या बहुसंख्यक समाज कुछ आकाशसे नहीं टपक पड़े हैं। ये सब समाज एक ही ऐसे वृक्षके फल हैं जिसकी जड़ें एक ही संस्कृति और एक ही भूमिमें बहुत दूरतक चली गयी हैं। किसी मेमनेको पकड़कर उसे कच्छ और कृपाण धारण कराके आप उसे सिंह नहीं बना सकते! गुरु गोविन्दसिंह जो शहीदों और योद्धाओंकी एक सेना खड़ी कर सके उसका कारण यही है कि उनके वीर खालसाको जिस जातिने उत्पन्न किया उसमें यह सामर्थ्य थी। सिंहके बीजसे ही सिंह पैदा होते हैं। पौधेकी डारपर खिला हुआ फूल यह नहीं

कह सकता कि, "देखो मैं कैसे खिलता हूं, हसता हूं और सुगन्ध देता हूं, और यह सब इस डंठेसे निकलनेकी बदौलत! पौधेकी जड़से तो मैं नहीं निकला—उससे मेरा क्या संबंध?" जब आप किसी सिखकी ओर संकेत करके कहते हैं कि यह गुरुका सच्चा अनुयायी था तब आप बिना कहे ही यह कहते हैं कि यह हिन्दू अपने गुरुका सच्चा अनुयायी निकला, क्योंकि सिख होनेके पहले वह हिन्दू था और सिख होनेके बाद भी वह हिन्दू ही रहता है। जबतक सिख अपने सिख-धर्मको सच्चाईके साथ मानते रहेंगे तबतक वे हिन्दू ही बने रहेंगे; क्योंकि तबतक यह भारत-भूमि (आसिन्धु सिन्धु-पर्यन्ता) उनकी पितृभू और पुण्यभू रहेगी। जब वे सिख-धर्मसे ही च्युत हो जायंगे तभी वे शायद हिन्दुत्वसे भी च्युत हो सकते हैं।

सिख लोगोंके संबंधमें हमने किसी कदर विस्तारके साथ ही यहांतक विचार किया। कारण, इस विचारमें जो जो बातें और दलीलें अपनी परिभाषाको सिखोंके हिन्दुत्वपर घटानेमें पेश की गयीं वे सब ऐसे ही अन्य सभी अवैदिक पन्थों और संप्रदायोंपर घटनेवाली हैं। उदाहरणार्थ, देवसमाजी निरीश्वरवादी हैं। परन्तु निरीश्वरवाद या नास्तिकवादसे हिन्दुत्वका क्या लेना-देना है? देवसमाजी इस भूमिको अपने पूर्वपुरुषोंकी भूमि—पितृभू मानते हैं। उसी प्रकार पुण्यभू भी मानते हैं। इसलिये वे हिन्दू हैं। अब इतना सब कह चुकनेके बाद यह कहनेकी आवश्यकता ही नहीं रहती कि आर्यसमाजी भाई भी हिन्दू ही हैं। कारण, हिन्दुत्वके

लक्षण तो उनमें इतनी प्रधानताके साथ विद्यमान हैं कि उन्हें हिन्दुओंके भी बीचके हिन्दू कहना चाहिये। सचमुच हमें तो एक भी ऐसा उदाहरण नहीं दिखायी देता जिससे हमारी इस परिभाषामें किसी प्रकार अव्याप्तिका दोष आवे।

एक ही बात ऐसी है, जिसमें कुछ कठिनाई भी मालूम होती है। उदाहरणार्थ, भगिनी निवेदिता क्या हिन्दू कहला सकती हैं? अपवादसे नियम सिद्ध होता है, यह बात यदि सच है तो वह बात यहां पूरे तौरपर घटती है। हमारी इस देशभक्त और उदारहृदय बहनने इस आसिन्धु सिन्धुपर्यता भूमिको अपनी "पितृभू" माना था। इस देशको वे सचमुच ऐसा ही मानती थीं और यदि हमारा राष्ट्र स्वतंत्र होता तो ऐसी पुण्यात्माको सबसे पहले हम इस देशके नागरिकत्वका अधिकार भेंट करते। हमारी परिभाषाके अन्तर्गत प्रथम लक्षण तो इस तरह भगिनी निवेदिताके उदाहरणपर घटता है। पर ऐसे उदाहरणोंमें, परिभाषाके अन्तर्गत जातीय रक्तका जो दूसरा लक्षण है वह कभी नहीं घट सकता। तथापि इस कठिनाईमें विवाह-बन्धनका मार्ग खुला रहता है। कारण यह स्पष्ट ही है कि विवाह-बन्धनसे कोई भी दो व्यक्ति एक हो जाते हैं। भगिनी निवेदिताके संबंधमें इस प्रकारकी कोई बात नहीं है, तौभी हिन्दुत्वकी परिभाषामें जो तीसरा लक्षण है उससे उन्हें हिन्दू कहलानेका अधिकार प्राप्त हो सकता था। कारण, उन्होंने हमारी संस्कृतिको स्वीकार किया था और वे इस भूमिको पुण्यभू मानकर इसकी पूजा करने यहां आयी थीं।

वे अपने अन्तःकरणमें यह अनुभव करती थीं कि मैं हिन्दू हूं, और यही एकही बात और सब बातोंसे बढ़कर है और हिन्दुत्व परखनेकी सच्ची कसौटी है। पर इस बातको भूलनेसे काम न चलेगा कि हम हिन्दुत्वके लक्षण बहुजन समाजके संस्कारोंकी बुनियादपर ही स्थिर करते हैं। और इसलिये हमें यह कहना पड़ेगा कि अहिन्दू माता-पितासे उत्पन्न कोई मनुष्य तभी हिन्दू हो सकता है जब इस देशको स्वदेश मानकर इस देशमें अपना रक्त-संबंध करे और इस तरह इसे यथार्थमें पितृभू मानकर पूजे, और हमारी संस्कृतिको मानकर इस देशको अनन्य भावसे अपनी पुण्यभू माने। इस प्रकारके सम्बंधसे आगे होनेवाली सन्तति निश्चय ही हिन्दू होगी। इसके आगे अब हम नहीं बढ़ सकते।

परन्तु, हिन्दूके किसी धर्म-सम्प्रदायको माननेसे कोई भी विदेशी मनुष्य सनातनी, सिख या जैन कहला सकता है और ये सब धर्म-सम्प्रदाय हिन्दूद्वारा ही प्रवर्त्तित होनेसे ये सब हिन्दू-धर्म भी माने जाते हैं और इसलिये इनमेंसे किसी भी सम्प्रदायमें सम्मिलित मनुष्य धर्म-सम्प्रदायके नाते "हिन्दू" कहला भी सकता है। परन्तु ध्यानमें रखनेकी बात यह है कि इस प्रकारसे धार्मिक विश्वास और संस्कार-संस्कृतिसे हिन्दू बना हुआ विदेशी मनुष्य हिन्दुत्वके तीन लक्षणोंमेंसे केवल इस एक ही लक्षणसे युक्त है अर्थात् केवल किसी हिन्दू-धर्म-सम्प्रदायको माननेसे ही वह हिन्दू नहीं माना जाता। हमारी मातृ-भूमि और संस्कृतिकी जो अमूल्य सेवा भगिनी निवेदिता या एनी बेसंट जैसी विदुषियों-

द्वारा होती है उसके लिये हमारे हृदयमें इतनी कृतज्ञता है, हिन्दू-जाति किसीके प्रेम-स्पर्शसे इतनी मृदुलहृदय हो जाती है कि भगिनी निवेदिता अथवा उनके जैसी कोई स्त्री या पुरुष अपने जीवनको हिन्दू-जातिके जीवनसे समरस कर दें तो हिन्दू-जातिमें आप ही उनका बेमालूम समावेश हो जाता है। परन्तु इसे सामान्य नियमका अपवाद ही समझना चाहिये। और कोई सामान्य नियम बहुत कठोर भी नहीं हो सकता और बहुत मुलायम भी नहीं हो सकता। जिन कसौटियोंपर हमने हिन्दुत्वकी परिभाषा-को अबतक कसा उनसे यह स्पष्ट हो गया होगा कि इस परि-भाषामें ये दोनों बातें हैं और उसमें न अव्याप्तिका दोष है और न अतिव्याप्तिका।

---

(८)

हिन्दूजातिकी शक्ति

यहांतक हमने हिन्दुत्व क्या है, इस बातका तटस्थ रहकर विचार किया और उसमें उपयुक्तताका विचारतक न आने दिया। अब सम्पूर्ण विवेचन जब हो चुका है तब इस बातका विचार करना अप्रासंगिक न होगा कि हिन्दुत्वके इन लक्षणोंसे हमारी जातिकी शक्ति, अखण्डता और उन्नतिमें कहांतक सहायता मिल सकती है। क्या ये लक्षण इतनी विस्तृत, इतनी गहरी और

इतनी मजबूत नींव बन सकते हैं कि इस नींवपर हिन्दू-जाति अपना वह भविष्य-निर्माण कर सकेगी जिससे उसपर होनेवाले आक्रमणोंका निवारण हो जाय, या हिन्दू-जातिने यह बालूकी भीत खड़ी की है?

कुछ प्राचीन राष्ट्रोंने अपने समग्र देशको ही दुर्गकी तरह सुरक्षित करनेके लिये बड़ी बड़ी दीवारें खड़ी कीं। आज वे दीवारें टूट-फूट गयी हैं और यत्र-तत्र दिखायी देनेवाले उनके अवशिष्ट चिह्नोंसे ही उनकी पहचान होती है; और जिन जातियों-की रक्षाके लिये ये दीवारें खड़ी की गयीं उनका तो कहीं पता ही नहीं है! हमारे पुराने पड़ोसी चीनियोंने पीढ़ी-दर-पीढ़ी परिश्रम करके अपने विशाल साम्राज्यके एक छोरसे दूसरे छोर-तक एक इतनी बड़ी, इतनी ऊंची और इतनी मजबूत दीवार खड़ी की कि संसार उसे मानवी प्रयत्नका एक आश्चर्य समझता है। यह आश्चर्य भी, अपने ही बोझके नीचे दब गया। सभी मानवी आश्चर्योंकी अन्तमें यही गति होती है! परन्तु प्राकृतिक आश्चर्योंको देखो! जिसकी सब इच्छाएं परितृप्त हो चुकी हों ऐसे अचल स्थितप्रज्ञ साधुकी तरह यह हिमालय ज्योंका त्यों खड़ा है। वैदिक कालमें ऋषियोंने इसका जो रूप देखा वही आज हम भी देख रहे हैं। यह हिमालय ही हमारा कोट (प्राचीर) है, जिसने इस विशाल देशको एक अभेद्य गढ़ बना दिया है।

आप खाई खनकर गगरियोंसे उनमें पानी भरते हैं और उसे परिखा कहते हैं। पर देखिये, यहां प्रत्यक्ष वरुण-देव ही

अपने एक हाथसे आठ खंड पृथ्वीको एक ओर ठेलकर दूसरे हाथसे वहां समुद्रपर समुद्र जल छोड़ रहे हैं ! यह हिन्द-महासागर और इसके ये उपसागर ही हमारी परिखा हैं।

ऐसी हमारी चतुःसीमा है और इससे हमें पृथ्वी और जल (सागर-तट) दोनोंका लाभ मिल रहा है।

हमारी मातृभूमि ईश्वरकी सबसे लाड़ली कन्या है। इसे उसने अपने महान् ऐश्वर्यसे सुसंपन्न किया है। इसकी नदियां गंभीर हैं और उनका प्रवाह अखंड है। इसकी भूमिमें इतनी मृदुता है कि हलसे वह जोती जाती है और उसके खेत हरे-भरे रहते हैं। इसकी आवश्यकताएं अत्यन्त अल्प हैं और इसकी प्रकृति इसके प्रत्येक अभावको पूरा करनेके लिये सदा प्रस्तुत है। वनस्पतियों और फलफूलोंकी कोई कमी नहीं—स्वयं सूर्यनारायण प्रकाश और उष्णता प्रदान कर उसे वैभवसंपन्न किये हुए हैं। उसे हिमाच्छादित देशोंकी लालसा नहीं है—वे उन्हींको मुबारक हों जो वहां रहते हैं। यहां यदि कभी ऐसी गरमी भी पड़ती है कि जी घबरा जाय तो वहां इतनी सरदी पड़ती है कि हाथ-पैर ठिठुर जायं। वहां सरदीसे यदि शारीरिक श्रम अधिक होता है तो यहां गरमीसे उसकी आवश्यकता ही कम हो जाती है। उष्ण आहारसे गला भून डालनेकी अपेक्षा, शीतल जलसे तृषा शांत करनेमें ही इसे अधिक आनंद मिलता है। जिन्हें यह आनन्द नहीं मिलता वे उसे प्राप्त करनेके प्रयत्नका आनन्द लें परन्तु जिन्हें यह आनन्द प्राप्त है वे उससे आनन्दित क्यों न हों

हिमाच्छादित टेम्स नदीमें चाहे जितनी तेजीके साथ अपना प्रपंच रचिये; यहां तो पतितपावनी गङ्गाके किनारे चन्द्रमाके शीतल शुभ्र प्रकाशमें घाट घाट नौकाओंद्वारा विहार करनेमें ही अधिक आनन्द आता है। हमारा यह हल, यह मयूर, यह कमल, यह हाथी और यह गीता बनी रहे, फिर चाहे हिमाच्छन्न देशोंमें जो कुछ आनन्द हो वह न मिले तो आर्यमाताको कोई परवा नहीं। सब कुछ अपने मन जैसा हो यह नहीं होता। इसके उद्यानोंमें हरियाली छायी हुई है, इसके खलिहान भरे हुए हैं, इसकी सर-सरिताओंका जल स्फटिकके समान स्वच्छ है, इसके पुष्प सौरभमत्त हैं, इसके फल सरस हैं और इसकी जड़ी-बूटियोंमें रोग-निवारणकी अद्भुत शक्ति है। इसकी चित्रकलाकी तूलिका उषाके रंगोंमें रंगी हुई और उसकी वीणाका गीत गोकुलके संगीतसे मिला हुआ है। सचमुच ही हिंदमाता परमेश्वरकी सकल ऐश्वर्य-संपन्न कन्या है।

क्या इंग्लैण्ड और क्या फ्रांस—चीनियों और कदाचित् अमेरिकनोंको छोड़कर—कोई देश ऐसा नहीं है जो नैसर्गिक बल और वैभवमें सिन्धुस्थानकी बराबरी कर सके। एक देश—एक घरका होना स्थायी और सुदृढ़ राष्ट्रके होनेके लिये, सबसे पहली बात है। संसारमें जितने देश हैं उनमें कोई ऐसा देश नहीं है जो इस विषयमें हिन्दुस्थानसे बढ़कर हो—हिन्दुस्थान-की भूमिकी रचना एक महान् राष्ट्रकी समृद्धिके लिये जितनी उपयुक्त है उससे अधिक उपयुक्त प्राकृतिक रचना और किसी भी

देशकी नहीं है। इसलिये हम हिन्दुओंमें वह प्रेम-बन्धन है—मातृभूमिका प्रेम ही हमारा सबसे पहला धर्म है और इससे वह प्रेमबन्धन इतना दृढ़ है कि वह राष्ट्रको संघटित और सुदृढ़ रखकर उसे अधिकाधिक पराक्रम करनेका उत्साह और सामर्थ्य प्रदान करता है।

हिन्दुत्वका जो दूसरा लक्षण है वह हमारे राष्ट्र-संघटन और गौरवकी प्रच्छन्न शक्तियोंको जगानेमें और भी अधिक समर्थ होता है। चीनको छोड़ संसारमें कोई ऐसा देश नहीं है जहां लोग इतने एक जातीय और साथ ही इतने प्राचीन, और संख्याबल तथा जीवनी शक्ति दोनोंके विचारसे इतने शक्तिमान हों जितने कि हिन्दुस्थानमें हम हिन्दू हैं। अमेरिकन लोग, जिन्हें हम देखते हैं कि राष्ट्रीयताके दैशिक आधारमें हमारे समान ही सौभाग्यवान हैं, तौभी वे इस बातमें हमसे पीछे ही रह जाते हैं। मुसलमान तो कोई जाति ही नहीं हैं और न ईसाई ही। इनका तो साम्प्रदायिक संघ है—जातीय या राष्ट्रीय संघ नहीं। पर हम हिन्दू जातीय संघ हैं, साथ ही साम्प्रदायिक और राष्ट्रीय संघ भी, और हम रहते भी हैं उसी एक ही प्राचीन हिन्दू-देश हिन्दुस्थानमें ही। हमारा संख्याबल भी कम नहीं है।

और संस्कृति? अंगरेज और अमेरिकन दोनों अपनेको एक जातिके समझते हैं, क्योंकि शेक्सपियरपर दोनोंका एकसा अधिकार है। परंतु हम हिन्दुओंके लिये अकेले कालिदास या भास ही नहीं हैं, रामायण और महाभारत भी हम सब हिन्दुओं-

की समान संपत्ति है! और वेद? वेदोंकी बात ही क्या कहें? अमेरिकामें अमेरिकन बालकोंको एक राष्ट्रगीत सिखाया जाता है जिसमें उनके हृदयमें आत्मगौरवका भाव जगानेके लिये यह कहा गया है कि, "अमेरिकनो, तुम्हारे पीछे चार सौ वर्षका इतिहास खड़ा है!" हम हिन्दुओंका इतिहास सदियोंके इस छोटेसे पैमानेसे नहीं नापा जाता, बल्कि यहां युगों और कल्पोंसे गिनती करनी पड़ती है और आश्चर्यके साथ यह पूछना पड़ता है कि "रघुपतेः क्व गतोत्तरकोशला। यदुपतेः क्व गता मथुरापुरी!!" हिन्दू आत्मगौरवका भाव जगानेका इतना प्रयत्न नहीं करता जितना सत्यको जगानेका प्रयत्न करता है। और शायद इसी कारणसे रामसेस और नेबुकडनज़रकी अपेक्षा हिन्दू अधिक आयुष्मान् है। जिस राष्ट्रको कोई भूतकाल नहीं, उसका कोई भविष्यकाल भी नहीं। यदि यह सच है तो जिस हिन्दू-जातिने भूतकालमें अनंत वीरोंको जन्म दिया और जिसको यह स्मरण है कि हमने यूनान और रोम, फारोहा और इनकस जैसे राष्ट्रोंका ध्वंस करनेवाली शक्तियोंको भी नष्ट कर डाला, उस हिन्दू-जातिके इतिहासमें निश्चय ही यह इसके भविष्यका भी अन्य किसी भी जातिसे अधिक विश्वसनीय आश्वासन है।

परंतु संस्कृतिके अतिरिक्त पुण्यभूमिका एक होना ऐसा बन्धन है जो कभी कभी मातृभूके बन्धनसे भी अधिक बलशाली होता है। मुसलमानोंको देखिये। दिल्ली और आगरेकी अपेक्षा मक्केकी ओर ही उनका ध्यान अधिक जाता है। कुछ

मुसलमान तो यह साफ साफ कह भी देते हैं कि यदि इस्लामके गौरवके लिये या मक्केकी रक्षाके लिये आवश्यक हो तो हिन्दुस्थानकी सब बातोंका बलिदान कर सकते हैं। यहूदियोंको देखिये। जिन देशोंमें ये लोग रहे, जहां इन्होंने पनाह पायी, जहां रहे और फले-फूले उन देशोंसे इनका अपनी पुण्यभूमिसे अधिक क्या, उतना भी प्रेम नहीं हुआ। इनका प्रेम सदा ही अपनी पुण्य-भूमि और मातृ-भूमि इन दोनोंमें बँटा हुआ ही रहेगा। यदि यहूदियोंका स्वप्न कभी सत्य हुआ—फिलस्तीन यदि कभी यहूदी राष्ट्र बना तो ये अपनी पुण्यभूमिका स्वार्थ पहले देखेंगे और पीछे अपनी अमेरिका और यूरोपकी मातृभूमिका; और यदि इस यहूदी राज्य और इनकी मातृभूमिके बीच युद्ध छिड़ा तो इनकी सहानुभूति यहूदी राज्यकी तरफ ही होगी, चाहे तनसे वे उस तरफ जाकर न मिलें। इतिहासमें इस प्रकारके उदाहरण भरे पड़े हैं। यूरोपमें क्रूसेडकी जो लड़ाइयाँ हुईं उनमें भिन्न-भिन्न जातियों, राष्ट्रों और भाषाओंके लोग एक होकर अपनी पुण्यभूके लिये लड़े। इससे भी पुण्यभूका प्रभाव कितना बलवान होता है यह स्पष्ट मालूम हो जाता है।

इसलिये किसी राष्ट्रके पूर्ण संघटित और अखंड होनेके लिये जो सबसे उत्तम अवस्था हो सकती है वह यही है कि मातृभू और पुण्यभू एक ही हो—वही पूर्वपुरुषोंकी भूमि हो, वही देवताओं और आचार्योंकी भूमि हो; वही अपने इतिहासकी घटनाओंकी भूमि हो, वही ईश्वरी लीलाके दृश्योंकी भूमि हो।

हिन्दू ही एक ऐसी जाति है जिसे यह आदर्श स्थिति प्राप्त है। चीनियोंको भी यह अवस्था नसीब नहीं हुई। केवल अरब और फिलस्तीन—यदि कभी यहूदी वहां अपना राज कायम कर सके तो—इस अवस्थाको प्राप्त कर सकते हैं। परंतु किसी जाति-को गौरवान्वित करनेवाली जो प्राकृतिक, सांस्कृतिक, ऐतिहा-सिक तथा ऐसी ही अन्य बातें हैं, उनका तो अरबमें प्रायः अकाल ही है और यदि कभी फिलस्तीनमें यहूदियोंका राज्य हुआ जिसका कि वे स्वप्न देख रहे हैं और जिसमें उनके साथ हमारी सहानुभूति है, तोभी वहां इन बातोंका तो अभाव ही रहेगा।

इंग्लैंड, फ्रान्स, जर्मनी, इटाली, तुर्की, ईरान, जापान, अफगानिस्तान, वर्त्तमान मिश्र (वर्त्तमान इसलिये कि "पंटो" की पुरानी संतति और उनका मिश्र तो बहुत पहले ही नष्ट हो चुके हैं), और अन्य राज्य, मेक्सिको, पेरू, चिली और कहांतक गिनावें, ये सब देश जातिके नाते कुछ या बहुत कुछ एक होने-पर भी दैशिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और संख्याबलके विचारसे, हम हिन्दुओंके मुकाबले बहुत ही क्षुद्र हैं। उसमें भी यह तो उन्हें नसीब ही नहीं कि उनकी मातृभू और पुण्यभू एक ही हो। अब रहे-सहे देशोंमें एक रूस और दूसरा अमेरिकाका राज्यसंघ ये दो देश भौगोलिक दृष्टिसे हमारे देशके समान होने-पर भी राष्ट्रीयताकी अन्य बातोंमें हमसे बहुत ही हीन हैं। अभी जो राष्ट्र जीवित हैं उनमें एक चीन राष्ट्र ही ऐसा है जो

देश, जाति, संस्कृति और संख्या, इन सब बातोंमें प्रायः हमारा समभाग्य है परंतु राष्ट्रीयत्वकी दो बातोंमें चीनी भी हमसे घट-कर हैं। वे दो बातें हैं—पूर्ण विकासको प्राप्त संस्कृत भाषा और यह पावन जन्म-भूमि।

इस प्रकार हिन्दुत्वके आधारभूत जो लक्षण हैं वे राष्ट्रीयताके भी आधारभूत तत्व हैं। यदि हम चाहें तो हिन्दुत्वकी इस आधारभूमिपर अपना वह भविष्य निर्माण कर सकते हैं जिसे आजतक संसारके अन्य किसी राष्ट्रने स्वप्नमें भी न देखा हो—वह भविष्य जो हमारे प्राचीन गौरवसे भी अधिक महान् हो। शर्त यह है कि हम इन बातोंका उपयोग करनेमें समर्थ हों। लोग यह स्मरण रखें कि यह समय संघका है—चारों ओर बड़े बड़े संघ बन रहे हैं। राष्ट्रोंका संघ, मित्रराष्ट्रोंका संघ, अखिल-इस्लाम-संघ, स्लाव जातियोंका संघ, ये सब क्या हैं? यह सब छोटे छोटे जीवोंका संघटनद्वारा बड़े होनेका उद्योग है जिसमें इस जीवनसंग्राममें विजयी होकर रहनेकी शक्ति प्राप्त हो। जो लोग संख्या-बलमें कम हैं, जिनकी दैशिक स्थिति दुर्बल है, जो प्राकृतिक और ऐतिहासिक बलसे संपन्न नहीं हैं, वे औरोंके साथ मिलकर प्रबल होना चाहते हैं। धिक्कार है उनको जिन्हें जन्मतः ये सब बल प्राप्त हैं पर जिन्हें उनका पता नहीं या पता होकर भी जो उनका तिरस्कार करते हैं! संसारका प्रत्येक राष्ट्र किसी न किसी संघमें स्थान प्राप्त करनेके लिये बेचैन होकर चेष्टा कर रहा है। परन्तु हिन्दुओ! आप चाहे जैन हों, समाजी

हों, सिख हों, सनातनी हों, कोई भी हों; क्या इस महासंघसे अलग होकर इसे नष्ट करना क्या आपके लिये लाभकारी होगा? और आपका यह संघ भी कैसा संघ है—सन्धियोंके कागजोंसे जुटा हुआ कोई कृत्रिम संघ नहीं, संकट विशेषके भयसे बना हुआ संघ नहीं, बल्कि यह ऐसा संघ है जो एक रक्त और एक संस्कृतिके अखंडनीय बन्धनोंसे संघटित हुआ है। यदि कुछ सामर्थ्य हो तो इस संघको और बलशाली बनाओ। अल्पसंख्यक समाज यह ध्यानमें रखें कि वे अखिल हिन्दू जातिसे अलग होकर जिस डारपर बैठे हैं उसी डारको काटनेका काम करेंगे। जिस किसी संबंधसे तुम अखिल हिन्दू जातिके साथ संबद्ध हो चाहे वह संबंध रक्तका हो, भाषाका हो, पर्व और त्योहारोंका हो, संस्कृति और मातृ-भूमिका प्रेम हो, उसे और भी मजबूत करो। हिन्दू रक्तकी यह प्राचीन पुनीत धारा अटकसे कटकतक नस-नसमें प्रवाहित हो और समग्र हिन्दू-जाति एक, अखंड,अभेद्य और फौलादकी तरह तीक्ष्णण हो।

एक बार पीछे फिरकर देखो, और फिर वर्तमानको देखो। क्या दिखायी देता है?—एशियामें अखिल-इस्लाम-संघ, यूरोपमें राजनीतिक संघ, अफ्रिका और अमेरिकामें नीग्रो जातिका संघ, इन दृश्योंको देखकर सोचो कि तुम्हारा भविष्य इस हिन्दू देशके भविष्यमें ही मिला हुआ है या नहीं; और यह हिन्दू-देशका भविष्य आखिर तुम हिन्दुओंकी ही शक्तिपर निर्भर करता है या नहीं। हम लोग अपने भरसक ऐसा उद्योग कर रहे हैं और ऐसा

करना हमारा कर्तव्य ही है कि जिससे इस देशके सब लोग हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई और यहूदियोंके अन्दर यह भाव जाग उठे कि हम सब पहले हिन्दुस्थानी—भारतवासी हैं और फिर और कुछ। पर इस ओर हिन्दुस्थानकी जहांतक भी प्रगति हुई हो, एक बात ऐसी है जिसे भुलानेसे काम न चलेगा। वह बात यही है कि क्या हिन्दुस्थानमें और क्या संसारके किसी भी देशमें, किसी राष्ट्रके खड़े होने और ठहरनेके लिये कोई आधारभूमि होनी चाहिये। यह आधारभूमि क्या है? किसी राष्ट्रका जीवन उस राष्ट्रके उन नागरिकोंके ही जीवनपर निर्भर करता है जिनका स्वार्थ, जिनका इतिहास और जिनकी सदभिलाषाएं उस राष्ट्रके देशके साथ मिली हुई हों। ये ही लोग हैं जिन्हें हम राष्ट्रकी आधारभूमि कह सकते हैं। उदाहरणार्थ, तुर्कोंको देखिये। राज्यक्रांति होनेके पश्चात् तरुण तुर्कोंको अपनी पार्लमेंट और सामरिक संस्थाओंके द्वार आर्मीनियनों और ईसाइयोंके लिये खोल देने पड़े इस नाते कि ये भी राष्ट्रके अङ्ग हैं चाहे इनका धर्म-संप्रदाय कुछ भी हो। पर जब सर्विया-के साथ युद्ध छिड़ा तब ईसाइयों और आर्मीनियनोंके मन पहले तो चंचल हुए और पीछे उनकी कितनी ही पलटनें शत्रु-पक्षमें जा मिलीं, क्योंकि राजकीय, जातीय और धार्मिक दृष्टिसे सर्वियनोंके साथ इनका अधिक सम्बन्ध था। अमेरिकाका उदा-हरण लीजिये। जब जर्मन महायुद्ध छिड़ा तब जर्मन-वंशके अमे-रिकन अमेरिका छोड़कर जाने लगे और अमेरिकापर यह एक

बड़ा संकट उपस्थित हुआ। अमेरिकाके नीग्रो भी अपने अफ्रिका-वासी नीग्रो भाइयोंसे जितना प्रेम करते हैं उतना अपने अमेरिका-वासी यूरोपियनोंसे नहीं। इसलिये अमेरिकाका भाग्य वहांके ऐंगलो-सैकसन लोगोंके भाग्यसे ही बंधा हुआ है। यही बात हिन्दुओंकी है। इनका भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों काल हिन्दुस्थानके साथ दृढ़बद्ध होनेसे यही देश उनकी "पितृभू" और "पुण्यभू है। इसलिये हिन्दुस्थानी या भारतीय राष्ट्रकी आधारभूमि हिन्दू ही हैं। इसलिये भारतीय राष्ट्रके नाते भी, हिन्दू भाइयो, अपनी हिन्दू राष्ट्रीयताको सुदृढ़ और संघटित करो; अपने अहिन्दु भाइयोंको या संसारके किसी भी प्राणीको किसी प्रकारका कष्ट पहुंचानेके लिये नहीं बल्कि इसलिये कि संसारमें चारों ओर जो गुट कायम हुए हैं उनमेंसे किसीके लिये भी यह संभव न हो कि वह हमारे ऊपर आक्रमण कर सके। जब हिन्दुस्थानके अन्य समाज हिन्दुस्थानके ही हितको अपना सबसे श्रेष्ठ हित और धर्म माननेको तैयार नहीं हैं और जबतक संसारके सभी देश मानव-जातिके हितको अपना व्यव-हार्य लक्ष्य बनानेको तैयार नहीं हैं, बल्कि ये सब लोग जाति या धर्म-संप्रदयदाय या राष्ट्रके नाते संकुचित स्वार्थोंकी बुनियादपर आक्रमण और संरक्षणके लिये, गुटबंदियां कायम कर रहे हैं, तब-तक, कमसे कम तबतक तो हिन्दुओ, अपने उन सूक्ष्म बंधनोंको दृढ़ करो जो तुम्हारे एकीभूत विराट शरीरके ही स्नायु हैं। जो लोग इन बन्धनोंको तोड़ डालनेकी आत्मघात करनेवाली चेष्टा

करते या "हिन्दू" नामको ही अस्वीकार करते हैं उन्हें पीछे अनुताप होगा और यह दिखायी देगा कि हिन्दू-जातिसे अलग होकर उन्होंने अपने जातीय जीवन और शक्तिके स्रोतसे अपने आपको अलग कर लिया।

"हिन्दुत्व" की व्याख्यामें राष्ट्रीयताके जिन लक्षणोंकी मीमांसा की गयी उनमेंसे कुछ ही लक्षणोंके होनेसे स्पेन और पुर्तगाल जैसे राष्ट्र संसारमें सिंह जैसे पराक्रम कर सके। तब, जिस हिन्दू-जातिमें राष्ट्रीयताके सभी लक्षण मौजूद हैं उसके लिये संसारमें कौनसी ऐसी बात है जो दुष्प्राप्य हो?

२२ करोड़ हिन्दू जिनकी कर्मभूमि, पितृभूमि और पुण्यभूमि हिन्दुस्थान है, जिनका ऐसा दिव्य इतिहास है, जो रक्तसंबंध और संस्कृतिके बंधनोंसे एक हैं, उनकी तरफ आंख उठाकर कौन देख सकता है? सारे संसारको सिर झुकाकर उनकी बात माननी पड़ेगी। एक दिन वह आनेवाला है जब मानव-जातिको इस महा-शक्तिका परिचय मिलेगा।

और यह भी निश्चित है कि जब कभी हिन्दू उस अवस्थाको प्राप्त करेंगे जब संसारको उनका आदेश सुनना पड़े तब हिन्दू जातिका वह आदेश गीताके और बुद्धके उपदेशसे भिन्न नहीं होगा। जब कोई हिन्दू हिन्दुत्वातीत होता है तब उसका हिन्दुत्व अथाह हो जाता है और भगवान् शङ्कराचार्यकी तरह "वाराणसी मेदिनी" कहकर समग्र भूमण्डलमें वह अपनी काशीका विस्तार देखने लगता है, अथवा तुकारामके साथ यह गाने लगता है कि "आमुचा स्वदेश। भुवनत्रयामध्यें वास। मेरा स्वदेश समग्र पृथिवीकी चतुःसीमामें व्याप्त है—वही मेरे देशकी चतुःसीमा है!"

॥ इति ॥